हिंदुस्तान का बँटवारा और पाकिस्तान की पैदाइश

Avinash Kumar
Assistant Professor & Head
Department of History
Patna College, Patna-800005
Mobile No. 6202393206
E-mail Id: avinashisavailable@gmail.com

उन परिस्थितियों और कारकों का सिलसिलेवार विवरण जिनकी परिणति हिंदुस्तान के तकसीम और पाकिस्तान की पैदाइश में हुई

भारत का विभाजन दो राष्ट्रों के सिद्धांत के तहत ब्रिटिश भारत के प्रेसीडेंसी और प्रांतों का विभाजन था, जिसके परिणामस्वरूप भारतीय उपनिवेश को दो स्वतंत्र प्रभुत्व, भारत और पाकिस्तान में गठित किया गया. भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947 ने 14-15 अगस्त 1947 की आधी रात को ब्रिटिश राज का अंत करते हुए ब्रिटिश भारत का विभाजन किया. भारत और पाकिस्तान कानूनी रूप से दो स्व-शासित देशों के रूप में उभरे. हिंदू और मुस्लिम प्रमुखताओं के आधार पर तीन प्रांतों बंगाल, असम और पंजाब को विभाजित किया गया था, जिसके कारण 14 मिलियन से अधिक लोगों को विस्थापित करने का मार्ग प्रशस्त हुआ था, जो कि एक शरणार्थी संकट, बड़े पैमाने पर हिंसा, हत्याओं और धार्मिक रेखाओं पर विघटन का मार्ग था. भारत का डोमिनियन 1950 में भारत गणराज्य में बदल गया था, जबकि पाकिस्तान का डोमिनियन प्रशासनिक रूप से पश्चिमी पाकिस्तान और पूर्वी पाकिस्तान में विभाजित हो गया था, जो 1956 में पाकिस्तान का इस्लामी गणराज्य बन गया. पूर्वी पाकिस्तान बाद में 1971 में इस संघ से अलग होकर बांग्लादेश बना.

भारत के विभाजन के कारण और परिस्थितियाँ (Reasons and Circumstances of Partition of India)

परिस्थितियाँ और घटनाएँ जो भारत के विभाजन की ओर अग्रसर थी.

बंगाल का विभाजन (Partition of Bengal)

1905 में भारत के तत्कालीन वायसराय लॉर्ड कर्जन ने रानी विक्टोरिया को अलग बंगाल बनाने के लिए कहा. हालांकि इसमें कोई संदेह नही था कि 70 मिलियन की आबादी के साथ, बंगाल का प्रशासन करना धीरे-धीरे मुश्किल हो रहा था, हालांकि इस तरह के विभाजन के पीछे वास्तविक उद्देश्य राजनीतिक था क्योंकि ब्रिटिश को युद्ध की आशंका थी अगर बंगाली हिंदू और मुस्लिम हाथ मिला लें. जैसा कि भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में दिखाई दे रहा था. अंग्रेज बंगाल को कमजोर करना चाहते थे जिसे भारतीय राष्ट्रवाद का मुख्य केंद्र माना जाता था. कर्जन ने 19 जुलाई, 1905 को बंगाल को विभाजित करने के निर्णय की घोषणा की. बंगाल-विभाजन 16 अक्टूबर 1905 से प्रभावी हुआ तदनुसार, बंगाल प्रेसीडेंसी ब्रिटिश भारत का सबसे बड़ा प्रशासनिक उपखंड दो भागों में बंट गया. बड़े पैमाने पर हिंदूओं को पश्चिमी क्षेत्रों में विस्थापित किया गया था, जो वर्तमान में पश्चिम बंगाल राज्य में रहते हैं. ओडिशा, बिहार और झारखंड, पूर्वी बंगाल और असम के मुस्लिम बड़े पैमाने पर पूर्वी क्षेत्र में बस गए. इस तरह से बंगाल को विभाजित करके, अंग्रेजों ने न केवल भारत के स्वतंत्रता संग्राम में बंगाली प्रभाव पर लगाम लगाने का प्रयास किया.

विभाजन को दोनों समुदाय द्वारा समर्थन नही किया गया, जिन्होंने इसे "विभाजन और शासन" नीति के रूप में मान्यता दी. इस दौरान बंगाल भर में सहज और छिटपुट विरोध प्रदर्शन हुए. विरोध प्रदर्शन ने स्वदेशी ("भारतीय खरीदें") आंदोलन को आकार दिया. लोगों ने ब्रिटिश उत्पादों का बहिष्कार किया, विभाजन विरोधी आंदोलन के नेताओं ने भारतीय वस्तुओं का उपयोग करने का संकल्प लिया, विदेशी सामानों की दुकानों पर पाबंदी लगा दी गई. पश्चिमी उत्पादों को आग में फेंक दिया गया और आयातित चीनी का भी बहिष्कार किया गया. विभाजन-विरोधी आंदोलन के नेताओं ने बंकिम चंद्र चटर्जी द्वारा

लिखित एक बंगाली कविता के शीर्षक 'वंदे मातरम' का इस्तेमाल नारे के रूप में किया. रवींद्रनाथ टैगोर की कविता से एक गीत तैयार किया गया था. कांग्रेस कार्य समिति ने बाद में (अक्टूबर 1937 में) गीत के पहले दो छंदों को भारत के राष्ट्रीय गान के रूप में अपनाया.

सार्वजनिक इमारतों पर बमबारी की गई, सशस्त्र डकैतियों को अनजान दिया गया और ब्रिटिश अधिकारियों की हत्या नौजवानों के समूह द्वारा की गई. जल्द ही नारा और विद्रोह देशव्यापी ध्यान का आकर्षण बन गया.

दूसरी ओर मुस्लिम समाज ने 1906 में नए वायसराय लॉर्ड मिंटो से मुलाकात की और मुसलमानों के लिए अलग निर्वाचक मंडलों के साथ-साथ उनके लिए आनुपातिक विधायी प्रतिनिधित्व भी मांगा. उन्होंने दिसंबर 1906 में ढाका में अखिल भारतीय मुस्लिम लीग राजनीतिक दल की स्थापना की, जिसकी मेजबानी नवाब सर ख्वाजा सलीमुल्लाह ने की थी और ढाका नवाब परिवार के आधिकारिक निवास अहसन मंज़िल में आयोजित किया था. लॉर्ड हार्डिंग ने बाद में राजनीतिक विरोधों के साथ-साथ बंगालियों की भावना को शांत करने के लिए 12 दिसंबर 1911 को बंगाल के दो हिस्सों को फिर से एकजुट किया.

प्रथम विश्व युद्ध (First world war)

प्रथम विश्व युद्ध (28 जुलाई 1914 – 11 नवंबर 1918) के दौरान ब्रिटिश भारतीय सेना का योगदान अपार था, जिसमें यूरोप, भूमध्य और मध्य पूर्व में प्रमुख सैन्य गतिविधि क्षेत्रों में बड़ी संख्या में स्वतंत्र ब्रिगेड और डिवीजनों की भागीदारी शामिल थी. हजारों भारतीय सैनिकों की मौत सहित युद्ध में भारतीय सैनिकों की भागीदारी की खबर दुनिया भर में अखबारों और रेडियो के माध्यम से पहुंच रही है. 1920 में भारत लीग ऑफ नेशंस के संस्थापक सदस्यों में से एक बन गया, जिसका मुख्य मिशन विश्व शांति बनाए रखना था. भारत ने एंटवर्प में 1920 के ग्रीष्मकालीन ओलंपिक में "लेस इंड्स एंगलाइस" (ब्रिटिश भारत) के नाम से भाग लिया. भारतीय नेता 19 वी सदी के अंत से भारत में संवैधानिक सुधारों के लिए दबाव बढ़ा रहे थे. उन्होंने भारत में सरकार से बड़ी भूमिका की मांग की.

प्रथम विश्व युद्ध के दौरान भारतीय सेना के योगदान के बाद, रूढ़िवादी ब्रिटिश राजनीतिक नेताओं ने भी संवैधानिक परिवर्तन की आवश्यकता को स्वीकार करना शुरू कर दिया ताकि ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य की सरकार में भारतीयों की भागीदारी बढ़ाई जा सके.

लखनऊ संधि (Lucknow Pact)

लखनऊ में दिसंबर 1916 में मुस्लिम लीग और कांग्रेस द्वारा एक संयुक्त सत्र आयोजित किया गया था जिसमें लखनऊ समझौते के रूप में एक प्रसिद्ध समझौता हुआ था. भारतीय स्वायत्तता की मांग के अनुसरण में, दोनों पक्ष समझौते के माध्यम से प्रांतीय विधानसभाओं में धार्मिक अल्पसंख्यकों के अनुपात में उच्च प्रतिनिधित्व की अनुमति देने पर सहमत हुए. इस समझौते को भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर माना गया क्योंकि इसने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच सौहार्दपूर्ण संबंध स्थापित किए और हिंदू मुस्लिम एकता की आशा की एक किरण प्रज्वलित की.

भारत सरकार अधिनियम 1919 (Government of India Act 1919)

भारत सरकार अधिनियम 1919 युनाइटेड किंगडम के संसद द्वारा पारित एक विधान था जिसे 'मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार' के नाम से भी जाना जाता है. इसे 23 दिसंबर 1919 को रॉयल असेंटेंट प्राप्त हुआ. मोंटागु-चेम्सफोर्ड सुधार के रूप में भी प्रसिद्ध हैं, इस अधिनियम में वाइसराय लॉर्ड चेम्स्फोर्ड और भारत के राज्य सचिव एडविन मोंटेगू की रिपोर्ट में सुधारों को शामिल किया गया था.

इसने प्रमुख प्रांतों के लिए एक द्वंद्व की शुरुआत की. जहां सरकार के कुछ क्षेत्रों का नियंत्रण "हस्तांतरित सूची" (जैसे कृषि, शिक्षा, स्वास्थ्य) स्थानीय सरकार के पर्यवेक्षण में शामिल थी, ऐसे प्रत्येक प्रांत में मंत्रियों की सरकार द्वारा नियंत्रित किया जाएगा जो प्रांतीय परिषद को जवाबदेह होंगे.

सरकार के अन्य क्षेत्रों जैसे विदेशी मामलों, रक्षा और संचार (जिसे 'आरक्षित सूची' में शामिल किया था) को वायसराय द्वारा नियंत्रित किया जाएगा. इस अधिनियम ने भारतीयों के नागरिक सेवा में प्रवेश के साथ-साथ सैन्य अधिकारी कोर में आसान और आरक्षित सीटें दोनों अधिवासित यूरोपीय, एंग्लो-इंडियन, भारतीय ईसाई, मुस्लिम और सिखों के लिए "सांप्रदायिक" के सिद्धांत "मिंटो-मॉर्ले सुधारों" की पुष्टि की. हालाँकि प्रांतों के लिए जिम्मेदार मंत्रियों को सत्ता का केवल आंशिक हस्तांतरण प्रदान किया गया था और ऐसे क्षेत्रों में धन पर नियंत्रण अभी भी ब्रिटिश आधिकारिकता के हाथों में था.

दो-राष्ट्र सिद्धांत (Two-nation theory)

पाकिस्तान का निर्माण दो-राष्ट्र सिद्धांत के सिद्धांत पर आधारित था जो पाकिस्तान आंदोलन के संस्थापक सिद्धांतों में से एक था. दो-राष्ट्र की विचारधारा के अनुसार, भारतीय हिंदू और मुसलमान दो विशिष्ट राष्ट्र हैं, जो भाषा और जातीयता सहित अपनी विशिष्ट क्षेत्र-वार समानता के बावजूद और भारतीय उपमहाद्वीप के मुसलमानों को एकजुट करने वाली प्राथमिक पहचान और कारक उनका धर्म है. इस प्रकार सिद्धांत ने भारत के मुस्लिम बहुल क्षेत्रों में मुसलमानों के लिए एक अलग मातृभूमि की वकालत की जहां वे इस्लाम को प्रमुख धर्म के रूप में देख सकते हैं. वकील और राजनेता मुहम्मद अली जिन्ना, जो अखिल भारतीय मुस्लिम लीग के नेता बने रहे और भारतीय उपमहाद्वीप में मुसलमानों के लिए एक अलग राष्ट्र को बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई.

कई हिंदू राष्ट्रवादी संगठन भी सिद्धांत से प्रभावित थे. उन्हें प्रेरित करने वाले अलग-अलग कारणों में भारत से पूरे मुस्लिम समुदाय को बाहर निकालना कानूनी रूप से, भारत में एक हिंदू राज्य की स्थापना. इस्लाम में धर्मांतरण को प्रतिबंधित करना और भारतीय मुसलमानों के बीच हिंदू धर्म में रूपांतरण के लिए शुद्धि का आयोजन करना शामिल था.

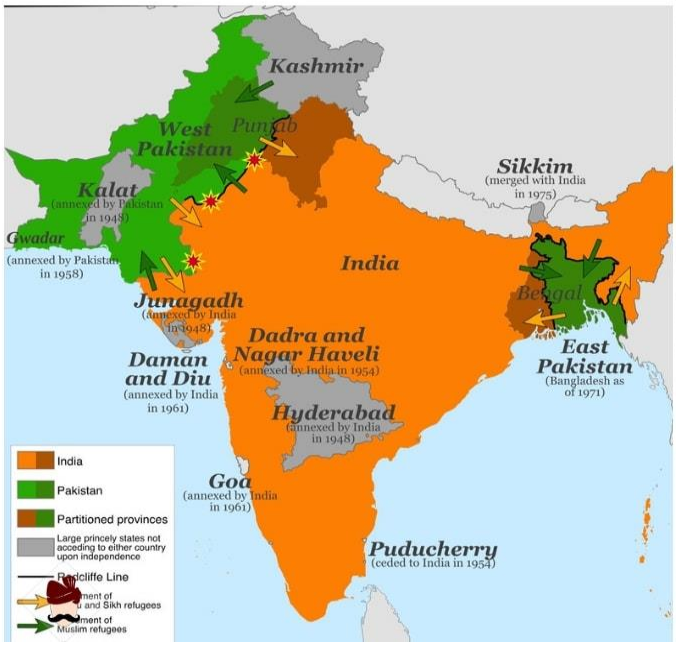

भारत के प्रमुख स्वतंत्रता सेनानियों में से एक लाला लाजपत राय जो अखिल भारतीय मुस्लिम लीग के गठन के बाद ब्रिटिश राज में हिंदू समुदाय के अधिकारों की रक्षा करने के लिए हिंदू महासभा के नेता बने रहे, पहले हिंदू समर्थकों में से एक थे. उन्होंने 14 दिसंबर 1924 को भारतीय अंग्रेजी भाषा के दैनिक समाचार पत्र "द ट्रिब्यून" में विवादास्पद रूप से लिखा, भारत को एक हिंदू राज्य और एक मुस्लिम में स्पष्ट विभाजन की मांग की. सिद्धांत की व्याख्याएं विविध हैं. जबकि एक ने मुस्लिम-बहुल क्षेत्रों से पूरे हिंदू समुदाय को हटाने की वकालत करने की वकालत की और इसके विपरीत, एक अन्य व्याख्या संप्रभु स्वायत्तता के लिए की गई जहां इस तरह के हस्तांतरण की आवश्यकता नहीं थी और हिंदू और मुस्लिम सह-अस्तित्व में रह सकते हैं, हालांकि भारतीय उपमहाद्वीप के मुस्लिम-बहुल क्षेत्रों के लिए एकांत अधिकार शामिल था.

भारत सरकार अधिनियम 1935 (Government of India Act 1935)

भारत सरकार अधिनियम अगस्त 1935 में शुरू में पारित किया गया था. अधिनियम के महत्वपूर्ण पहलुओं में 1919 अधिनियम की अराजकता प्रणाली को समाप्त करना और केंद्र में ब्रिटिश भारतीय प्रांतों को अधिक स्वायत्तता प्रदान करने और राजशाही का परिचय देना शामिल था. एक संघीय न्यायालय "फेडरेशन ऑफ इंडिया" की स्थापना की. स्थापना का प्रावधान भारतीय परिषद की घोषणा करते हुए सलाहकार परिषद की शुरूआत, प्रत्यक्ष चुनाव शुरू करना, अल्पसंख्यकों की सुरक्षा के साधन प्रदान करना था.

1936-37 की सर्दियों के दौरान आंशिक रूप से प्रांतों का पुनर्गठन और प्रांतीय चुनाव ब्रिटिश भारत में हुए थे. जब भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस आठ में से आठ प्रांतों में सत्ता में आई थी, जबकि अखिल भारतीय मुस्लिम लीग किसी भी प्रांत में सरकार बनाने में असफल रही थी. हालांकि चुनी हुई सरकारों का गठन अधिकांश रियासतों में संभव नही हो सका क्योंकि राजकुमारों की अवहेलना होती थी. हालाँकि कांग्रेस ने यह सुनिश्चित किया कि धार्मिक मामले आर्थिक और सामाजिक मामलों की तुलना में भारतीयों के लिए अधिक महत्व नही रखते हैं, लेकिन कुछ घटनाओं ने विभिन्न क्षेत्रों में पार्टी को धीरे-धीरे मुस्लिम जनता से अलग कर दिया. ऐसी ही एक घटना में यूपी के नवगठित प्रांतीय प्रशासन ने गाय के संरक्षण के साथ-साथ हिंदी के प्रयोग को भी बढ़ावा दिया. मुस्लिम लीग द्वारा मुस्लिमों की स्थिति का आकलन करने के लिए कांग्रेस द्वारा शासित प्रांतों में जांच की गई. मुसलमानों को धीरे-धीरे चिंता होने लगी कि भविष्य में वे स्वतंत्र भारत में हिंदु कांग्रेस सरकार के अधीन अन्यायपूर्ण व्यवहार करेंगे.

द्वितीय विश्व युद्ध (Second World War)

1939 में द्वितीय विश्व युद्ध छिड़ने के बाद, भारत के तत्कालीन वायसराय लॉर्ड लिनलिथगो ने सितंबर 1939 में एक घोषणा की कि भारत जर्मनी के साथ युद्ध में था. उन्होंने भारतीय लोगों के चुने हुए प्रतिनिधियों से सलाह के बिना इस तरह के एक महत्वपूर्ण निर्णय की घोषणा की. वायसराय की इस तरह की कार्रवाई के विरोध में अक्टूबर और नवंबर 1939 में कांग्रेस के मंत्रालयों ने इस्तीफा दे दिया, लेकिन मुस्लिम लीग (जो राज्य के संरक्षण में चल रही थी) ने कांग्रेस के प्रभुत्व, "उद्धार दिवस" से उत्सव का आयोजन किया और अपने युद्ध के प्रयास में ब्रिटेन का समर्थन किया. लिनलिथगो द्वारा जिन्ना को गांधी के समान दर्जा दिया गया था जबकि कांग्रेस को "हिंदू संगठन" के रूप में चिह्नित किया गया था.

लाहौर संकल्प (Lahore Resolution)

22 मार्च से 24 मार्च तक 1940 में तीन दिवसीय वार्षिक सत्र मुस्लिम लीग द्वारा आयोजित किया गया था. एक औपचारिक राजनीतिक वक्तव्य जो लाहौर संकल्प के रूप में प्रसिद्ध हुआ, जिसे "पाकिस्तान संकल्प" के रूप में भी जाना जाता है, मुस्लिम लीग द्वारा अपने वार्षिक सत्र के अंतिम दिन अपनाया गया था. संकल्प में ब्रिटिश भारत के पूर्वी और उत्तर-पश्चिमी हिस्सों में मुसलमानों के लिए स्वतंत्र राज्यों की परिकल्पना की गई थी, जहां आवश्यक क्षेत्रीय समायोजन करने के बाद समुदाय संख्यात्मक रूप से बहुसंख्यक था और यह भी उल्लेख किया था कि इस प्रकार गठित घटक स्वायत्त और संप्रभु होना चाहिए.

अगस्त 1940 में लिनलिथगो ने प्रस्ताव किया कि द्वितीय विश्व युद्ध के बाद भारत को डोमिनियन का दर्जा दिया जाए. अपने युद्ध प्रयासों में सभी भारतीय समुदायों और पार्टियों से समर्थन प्राप्त करने के बाद ब्रिटिश सरकार ने उस वर्ष 'प्रस्ताव' के रूप में एक प्रस्ताव भी प्रसिद्ध किया. इसने वायसराय की कार्यकारी परिषद के विस्तार का वादा किया. जिसमें अधिक भारतीयों को शामिल करना, सलाहकार युद्ध परिषद की स्थापना करना, युद्ध के बाद अपने स्वयं के संविधान को बनाने के लिए भारतीयों के अधिकार की मान्यता और अल्पसंख्यकों के विचारों को ध्यान में रखना शामिल था. हालांकि इस प्रस्ताव को उस वर्ष सितंबर में कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों ने अस्वीकार कर दिया था. क्योंकि यह किसी तरह से मुस्लिम लीग को वीटो शक्ति प्रदान कर रहा था जबकि बाद में इसे अस्वीकार कर दिया क्योंकि पाकिस्तान की स्थापना के लिए इसमें कोई स्पष्ट आश्वासन नही दिया गया था. सविनय अवज्ञा आंदोलन को फिर से कांग्रेस द्वारा पुनर्जीवित किया गया.

भारत छोड़ो आंदोलन (Quit India Movement)

8 अगस्त 1942 को द्वितीय विश्व युद्ध के बीच प्रमुख भारतीय स्वतंत्रता सेनानी महात्मा गांधी ने अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के बॉम्बे सत्र में भारत छोड़ो आंदोलन या भारत अगस्त आंदोलन शुरू किया और ब्रिटिश राज को समाप्त करने की मांग की भारत में बॉम्बे के गोवालिया टैंक मैदान में भारत छोड़ो भाषण देते समय गांधी ने करो या मरो का नारा दिया. इसके बाद अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी द्वारा बड़े पैमाने पर विरोध प्रदर्शन किया गया. कुछ ही घंटों में अंग्रेजों ने कांग्रेस के पूरे नेतृत्व को किसी भी मुकदमे में कैद कर दिया और उनमें से अधिकांश को युद्ध के अंत तक जेल में रखा और उन्हें जनता से अलग कर दिया जबकि मुस्लिम लीग ने स्वतंत्र रूप से अपना संदेश फैलाया.

1946 के चुनाव (1946 elections)

यूनाइटेड किंगडम के नए प्रधानमंत्री क्लीमेंट एटली जिन्होंने वर्षों तक भारतीय स्वतंत्रता के मुद्दे का समर्थन किया. उन्होंने पद संभालने के बाद इस विषय को सर्वोच्च प्राथमिकता दी. जनवरी 1946 से भारत में कई विद्रोह टूट गए, जिसने केवल अकेली सरकार को स्वतंत्रता के मुद्दे पर तेजी लाने के लिए प्रेरित किया. 1946 के प्रारंभ में भारत में चुनाव हुए जिसमें कांग्रेस को 11 प्रांतों में से 8 में जीत मिली और अधिकांश हिंदुओं के लिए कांग्रेस ब्रिटिश सरकार के वैध उत्तराधिकारी के रूप में उभरी. मुस्लिम वोट और प्रांतीय विधानसभाओं में अधिकांश आरक्षित मुस्लिम सीटों को मुस्लिम लीग ने सेंट्रल असेंबली की सभी मुस्लिम सीटों पर जीत हासिल की. जिन्ना ने मुस्लिम लीग की इस सफलता की व्याख्या मुसलमानों की एक अलग राज्य की लोकप्रिय माँग के रूप में की.

डायरेक्ट एक्शन डे (Direct Action Day)

कांग्रेस और मुस्लिम लीग एक समझौते पर आने में विफल रहे. ब्रिटिश राज से भारतीय नेतृत्व को सत्ता हस्तांतरित करने के लिए एक कैबिनेट मिशन योजना अंग्रेजों द्वारा तैयार की गई थी. इसने एकजुट भारत को संरक्षित करने का प्रस्ताव रखा जो कांग्रेस द्वारा भी वांछित था. हालांकि, मुस्लिम लीग द्वारा एक वैकल्पिक योजना बनाई गई थी जिसमें ब्रिटिश भारत के विभाजन को हिंदू बहुल भारत में और मुस्लिम-बहुल पाकिस्तान को शामिल किया गया था, जिसे कांग्रेस ने पूरी तरह से खारिज कर दिया था. इस तरह की अस्वीकृति के विरोध में, मुस्लिम लीग द्वारा 16 अगस्त 1946 को एक सामान्य हड़ताल की योजना बनाई गई थी, जिसे कांग्रेस और अंग्रेजों दोनों के लिए मुसलमानों के पूर्ण प्रदर्शन के लिए 'डायरेक्ट एक्शन डे' कहा गया. जिसे ग्रेट कलकत्ता किलिंग्स के रूप में भी जाना जाता है. 'डायरेक्ट एक्शन डे' ब्रिटिश भारत के इतिहास में इस समय तक के सबसे खराब सांप्रदायिक दंगों का गवाह था. मुस्लिमों और हिंदुओं के बीच बंगाल प्रांत के कलकत्ता (वर्तमान में कोलकाता) शहर में व्यापक सांप्रदायिक दंगे हुए. इस दिन ने 'द वीक ऑफ द लॉन्ग नाइफ्स' की भी शुरुआत की. घरों में महिलाओं और बच्चों पर हमले से सड़कों पर जो क्रूरता बढ़ी, वह तीन दिनों तक जारी रही, जिसमें हजारों हिंदू और मुसलमान मारे गए. हालांकि घटनाओं के ऐसे मोड़ से हैरान, कांग्रेस-नीत अंतरिम सरकार को उस साल सितंबर में जवाहरलाल नेहरू के साथ एकजुट भारत के प्रधानमंत्री के रूप में स्थापित किया गया था. धीरे-धीरे सांप्रदायिक हिंसा फैल गई और संयुक्त प्रांत में बंगाल, बिहार, रावलपिंडी और गढ़मुक्तेश्वर में नोआखली में अपनी छाप छोड़ी.

माउंटबेटन प्लान (Mountbatten Plan)

विभाजन को अपरिहार्य के रूप में देखने वाले पहले कांग्रेस नेताओं में से एक वल्लभभाई पटेल भी थे. उन्होंने मुस्लिम लीग के मंत्रियों को सरकार में शामिल करने के लिए जिन्ना के प्रत्यक्ष कार्य अभियान को भी बंद कर दिया. उन्होंने दिसंबर 1946 से जनवरी 1947 तक मुस्लिम-बहुसंख्यक प्रांतों से बाहर बने पाकिस्तान के विषय पर सिविल सेवक वी. पी. मेनन के साथ काम किया. पटेल द्वारा सुझाए गए विचारों को भारतीय जनता से काफी समर्थन प्राप्त किया.

लॉर्ड लुईस माउंटबेटन को क्लेमेंट एटली ने 20 फरवरी 1947 को भारत के अंतिम वायसराय के रूप में नियुक्त किया था और 30 जून 1948 तक स्वतंत्र भारत में ब्रिटिश भारत के संक्रमण की निगरानी की जिम्मेदारी सौंपी गई थी. उन्हें भारत के

विभाजन को बनाए रखने से बचने का निर्देश दिया गया था. भारत को स्वायत्तता हस्तांतरित करके एकजुट किया गया और बदलती हुई परिस्थितियों के साथ तालमेल बिठाने की सलाह दी गई ताकि ब्रिटिशों को कम से कम प्रतिष्ठित नुकसान के साथ बाहर निकाला जा सके. सांप्रदायिक स्थिति को भांपने के बाद माउंटबेटन ने यह भी निष्कर्ष निकाला कि विभाजन सत्ता के त्वरित और क्रमिक हस्तांतरण के लिए एकमात्र विकल्प था और देरी से गृह युद्ध शुरू हो सकता है. 3 जून 1947 को, उन्होंने एक प्रेस कॉन्फ्रेंस में एक योजना की घोषणा की जिसे 'माउंटबेटन प्लान' के नाम से भी जाना जाता है और साथ ही 15 अगस्त 1947 को स्वतंत्रता की तारीख दी. इस योजना में बंगाल और पंजाब के मुस्लिम बहुल प्रांतों का विभाजन शामिल था. भारत और पाकिस्तान के दो अलग-अलग प्रभुत्वों में ब्रिटिश भारत का वास्तविक विभाजन. हिंदू और सिख बहुमत वाले क्षेत्रों को नए भारत को सौंपा गया था, जबकि मुस्लिम-बहुल क्षेत्रों को नए राज्य पाकिस्तान के लिए सौंपा गया था. पटेल ने इस योजना से सहमत होने के लिए नेहरू और अन्य कांग्रेस नेताओं के साथ अपनी बात रखी और उनकी पैरवी की. हालाँकि गांधी तब भी विभाजन के खिलाफ थे, कांग्रेस ने योजना को मंजूरी दे दी और पटेल ने विभाजन परिषद में भारत का प्रतिनिधित्व करते हुए सार्वजनिक संपत्ति के विभाजन का पर्यवेक्षण किया. पाकिस्तान ने भारतीय सेना के एक तिहाई छह में से दो प्रमुख महानगरीय शहरों में से दो और भारतीय रेलवे लाइनों के दो-पाँचवें हिस्से में प्रवेश किया. पटेल और नेहरू ने भी भारतीय मंत्रिपरिषद का चयन किया. दूसरी ओर मुस्लिम लीग ने भी इस प्रस्ताव को मंजूरी दे दी क्योंकि एक अलग राज्य के लिए उनकी मांग पूरी हो गई थी. सिखों का प्रतिनिधित्व करने वाले मास्टर तारा सिंह और दलित समुदाय का प्रतिनिधित्व करने वाले बी. आर. अम्बेडकर सहित अन्य लोगों ने भी इस योजना को मंजूरी दी.

विभाजन और भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947 (Partition and Indian Independence Act of 1947)

18 जुलाई 1947 को ब्रिटिश संसद ने भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947 पारित किया. इस अधिनियम ने भारत और पाकिस्तान के दो नए स्वतंत्र प्रभुत्वों में ब्रिटिश भारत के विभाजन का नेतृत्व किया और रियासतों पर अंग्रेजों का आधिपत्य त्याग दिया. पाकिस्तान का स्वतंत्र संघीय प्रभुत्व जिसमें दो एन्क्लेव, पूर्वी पाकिस्तान (वर्तमान में बांग्लादेश) और पश्चिमी पाकिस्तान (आधुनिक पाकिस्तान) शामिल हैं, भारत द्वारा भौगोलिक रूप से अलग किए गए. 14 अगस्त 1947 को मुहम्मद अली जिन्ना इसके पहले जनरल के रूप में अस्तित्व में आए. उस वर्ष 15 अगस्त को ब्रिटिश कॉमनवेल्थ ऑफ नेशंस में भारत एक स्वतंत्र प्रभुत्व बन गया और जवाहरलाल नेहरू ने प्रधानमंत्री पद की शपथ ली, जबकि माउंटबेटन देश के पहले गवर्नर जनरल बने. महात्मा गांधी राष्ट्रपिता, ने विभाजन के दौरान कलकत्ता में रहने का फैसला किया, जहां उन्होंने सांप्रदायिक दंगों को रोकने के लिए प्रयास किया, उपवास और कताई रखकर स्वतंत्रता दिवस बिताने की कसम खाई और नए प्रवासियों के साथ काम किया.

रेडक्लिफ रेखा (Radcliffe Line)

भारत और पाकिस्तान के बीच बाउंड्री सीमांकन लाइन, रेडक्लिफ रेखा के नाम से प्रसिद्ध, जिसका नाम इसके वास्तुकार सर सिरिल रेडक्लिफ के नाम पर 17 अगस्त, 1947 को प्रकाशित किया गया था. वर्तमान में लाइन के पश्चिमी हिस्से में भारत-पाकिस्तान सीमा को दर्शाया गया है, जबकि इसकी पूर्वी तरफ दर्शाया गया है. इसके बाद पाकिस्तान ने संयुक्त राष्ट्र (यूएन) की सदस्यता के लिए आवेदन किया जिसे उस वर्ष 30 सितंबर को महासभा द्वारा स्वीकार कर लिया गया था. भारत, 1945 से संयुक्त राष्ट्र का एक संस्थापक सदस्य, प्रभुत्व का दर्जा प्राप्त करने के बाद भी अंतर सरकारी संगठन का सदस्य बना रहा.

भारत और पाकिस्तान के बीच हिंसा (Violence between India and Pakistan)

रेडक्लिफ रेखा की घोषणा जिसमें बंगाल और पंजाब प्रांतों का विभाजन शामिल था. बाद में तीव्र सांप्रदायिक हिंसा और जनसंख्या हस्तांतरण की भयावह अवधि थी, जो कि किसी भी भारतीय नेता ने नहीं देखी थी. जैसा कि प्रत्यक्षदर्शियों के अनुसार, नरसंहार की भयावह प्रवृत्ति के साथ हिंसा की भयावह और बर्बर घटनाओं में पीड़ितों के उत्परिवर्तन शामिल थे, जिनमें

उनके अंगों और जननांगों को काटना, गर्भवती महिलाओं को बेदखल करना, ईंट की दीवारों के खिलाफ बच्चों के सिर को मारना और शवों का प्रदर्शन शामिल था.

विशाल जनसंख्या हस्तांतरण और विस्थापन (Massive population transfer and displacement)

भारत और पाकिस्तान के दर्दनाक विभाजन में विशाल जनसंख्या आदान-प्रदान शामिल थे. लाखों लोगों को अपनी मातृभूमि से उखाड़ फेंका गया था और उन्हें अपने सभी गुणों और सामानों को रातोंरात पीछे छोड़ना पड़ा और पैदल यात्रा करना पड़ा, बैलगाड़ी की रेलगाड़ियाँ और जो भी नई ज़मीन का वादा किया. जो उनके लिए एक नया जीवन और घर था. सूत्रों के अनुसार विभाजन के बाद भारत में 330 मिलियन, पूर्वी पाकिस्तान में 30 मिलियन और पश्चिमी पाकिस्तान में 30 मिलियन लोग थे. पंजाब में पश्चिम से विस्थापितों की अधिकतम संख्या (लगभग 11.2 मिलियन) थी. जबकि 4.7 मिलियन हिंदू और सिख भारत से पश्चिम पाकिस्तान चले गए, 6.5 मिलियन मुसलमान भारत से पश्चिम पाकिस्तान चले गए. पूर्वी हिस्से में 0.7 मिलियन मुस्लिम पूर्वी पाकिस्तान से भारत में आए और 2.6 मिलियन हिंदू पूर्वी पाकिस्तान से भारत में चले गए. 1931 और 1951 की जनगणना द्वारा उपलब्ध कराए गए आंकड़ों पर किए गए एक अध्ययन से पता चला है कि पंजाब की सीमा पर बड़े पैमाने पर स्थानांतरण के दौरान लगभग 2.23 मिलियन लोग लापता हो गए, जिसमें 1.26 मिलियन लापता मुसलमान शामिल थे, जो पश्चिमी भारत छोड़ने के बाद पाकिस्तान नही पहुंचे और इसी तरह 0.84 मिलियन लोग लापता हिंदु / सिख थे.

शरणार्थियों का निपटान (Settlement of Refugees)

भारत और पाकिस्तान दोनों को शरणार्थियों को फिर से बसाने में कई साल लग गए. भारत में शरणार्थियों को शुरुआत में किंग्सवे कैंप में सैन्य बैरकों, लाल किला और पुराना किला जैसे ऐतिहासिक स्थानों जैसे विभिन्न सैन्य स्थलों में आश्रय दिया गया था. शरणार्थियों को फिर से बसाने के लिए, भारत सरकार ने बाद में कई निर्माण परियोजनाएं शुरू की, जिसके कारण दिल्ली में पंजाबी बाग, लाजपत नगर और राजिंदर नगर जैसी आवासीय कॉलोनियों का निर्माण हुआ. भारत सरकार शिक्षा, रोजगार और शरणार्थियों के लिए अन्य अवसरों का प्रावधान करने के लिए भारत भर में कई योजनाओं के साथ आई. 1947 में ब्रिटिश भारत के हिंसक विभाजन ने भारत और पाकिस्तान के बीच एक मजबूत, जटिल और बड़े पैमाने पर शत्रुतापूर्ण संबंध विकसित किया जो आज तक कायम है.

जिन्ना और विभाजन-एक ऐतिहासिक गल्प

आज़ाद भारत इस 15 अगस्त को पूरे 73 (1947-2020) साल का हो जाएगा। 73 साल के इस बूढ़े देश के नौजवान नस्लों को आज कुछ भी याद नही कि भारत के जन्म के समय क्या-क्या हुआ था। उन्होंने कुछ लोगों के नाम सुन रखे हैं और उनके बारे में सुनी-सुनाई और पढ़ी-पढ़ाई धारणाएँ पाल रखी हैं। एक थे जिन्ना, जिन्होंने धर्म के आधार पर देश को दो भागों में बँटवा दिया। एक थे नेहरू जिन्होंने प्रधानमंत्री बनने के लिए देश का बँटवारा स्वीकार कर लिया। एक थे पटेल जो नेहरू से ज़्यादा योग्य थे लेकिन गाँधी जी ने उनको प्रधानमंत्री नही बनने दिया। एक थे गाँधी जिन्होंने पहले तो बँटवारे का विरोध किया, लेकिन बाद में न केवल मान लिया बल्कि पाकिस्तान को 55 करोड़ दिलवाने के लिए अनशन भी किया। और एक थे सुभाष चंद्र बोस जो बंदूक़ के बल पर देश को आज़ाद कराना चाहते थे लेकिन असफल रहे और बाद में नेहरू ने उनको गुमनामी के अँधेरे में जीने को मजबूर कर दिया।

पाक को भारत से जुड़ा रखना चाहते थे जिन्ना!

पार्टिशन नामक इस नाटक के सबसे महत्वपूर्ण पात्र हैं मुहम्मद अली जिन्ना क्योंकि पाकिस्तान की लड़ाई में निर्णायक गोल उन्होंने ही दागा था। लेकिन यह कहना कि जिन्ना ही पार्टिशन के लिए पूरी तरह ज़िम्मेदार थे, पूरी तरह ग़लत होगा। कारण यह कि अव्वल तो यह बँटवारा जिस दो क़ौमों के सिद्धांत के आधार पर हुआ था, वह जिन्ना का नही था। वह सिद्धांत सर सैयद अहमद ख़ान आज़ादी से सालों पहले यानी 19वी शताब्दी में ही रख गए थे। दूसरे, जिन्ना 1946 के मध्य तक इस बात का प्रयास करते रहे कि उनके सपनों का पाकिस्तान बँटवारे के बाद भी भारत के साथ जुड़ा रहे, भारतीय महासंघ का हिस्सा बनकर रहे। किस तरह, यह हम आगे चलकर जानेंगे और यह भी जानेंगे कि क्यों नेहरू, पटेल और दूसरे कांग्रेसी नेताओं ने जिन्ना की यह इच्छा पूरी नही होने दी।

दो क़ौमों का सिद्धांत

सर सैयद अहमद ख़ाँ कोई कट्टरवादी और संकीर्णतावादी मुसलमान नही थे। उलटे वे एक समाज सुधारक थे और चाहते थे कि मुसलमान अपने पिछड़ेपन से उबरें जिसका उनके मुताबिक़ एक ही तरीक़ा था कि वे आधुनिक तालीम हासिल करें, ख़ासकर अंग्रेज़ी और विज्ञान की। सर सैयद अहमद ख़ाँ देख रहे थे कि अंग्रेज़ भविष्य में भारतीयों को शासन और प्रशासन में प्रतिनिधित्व देने और बढ़ाने को राज़ी हो सकते हैं और उनको डर था कि यदि मुसलमानों ने शिक्षा के प्रति अभी से रुचि नही दिखाई तो वे भविष्य में शासन और प्रशासन में भागीदार होने की क़ाबिलियत साबित नही कर पाएँगे। सर सैयद अहमद ख़ाँ को शिक्षा और धर्म संबंधी अपने विचारों के कारण कट्टरवादी मुल्लाओं से भारी विरोध सहना पड़ा।उनके विचारों के खिलाफ देवबंदी मुल्लाओं ने सैकड़ों फतवे तक जारी किए थे और उन्हें कौम का गद्दार तक कह डाला था।

1885 में जब शिक्षित भारतीयों को शासन में अधिक प्रतिनिधित्व दिलाने और नागरिक-राजनीतिक विषयों पर शासन के साथ चर्चा करने के लिए कुछ नेताओं ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का गठन किया तो उसके नेताओं ने सर सैयद अहमद को भी उसके साथ जुड़ने को आमंत्रित किया लेकिन सर सैयद अहमद नही मानते थे कि कांग्रेस जैसी कोई संस्था हिंदुओं और मुसलमानों दोनों के हितों का प्रतिनिधित्व कर सकती है। कांग्रेस की गतिविधियों से सर सैयद अहमद ख़ाँ को एक और डर सताने लगा था। वह यह कि यदि कभी अंग्रेज़ों ने भारत से डेरा-डंडा उखाड़ने का तय किया तो मुसलमानों का क्या होगा? एक तो वे वैसे ही शिक्षा के मामले में पिछड़े हुए थे, दूसरे हिंदुओं का भारत में बहुमत है। ऐसे में उनको लगा कि आज़ाद भारत में मुसलमानों के साथ बराबरी का सलूक नही किया जाएगा। इसीलिए वे चाहते थे कि अंग्रेज़ों का राज बना रहे। मार्च 1888 में मेरठ में दिए गए एक भाषण में उन्होंने कहा:

'इस समय हमारी क़ौम शिक्षा और संपत्ति के मामले में बहुत ही बुरे हाल में है लेकिन अल्लाह ने हमें ईमान की रोशनी दी है और हमारे पास क़ुरान है जो हमें राह दिखाती है और जिसने पहले से निश्चित कर दिया है कि हम और वे

(अंग्रेज़) मित्रतापूर्वक रहेंगे। अब अल्लाह ने उन्हें हमारा शासक तय कर दिया है। इसलिए हमें उनसे मित्रता बढ़ानी चाहिए और ऐसे तरीक़े अपनाने चाहिए जिससे उनका शासन स्थायी और सुदृढ़ हो जाए, और यह बंगालियों के हाथ में न जाने पाए... अगर हम बंगालियों के राजनीतिक आंदोलन में शरीक होंगे तो हमारी क़ौम को नुक़सान होगा, क्योंकि हम किताब वाले लोगों (ईसाइयों) का आधिपत्य छोड़कर हिंदुओं की अधीन नही होना चाहते।'

इसी भाषण में उन्होंने आगे कहा:

'मान लें कि कल अंग्रेज़ और उनकी सेना भारत छोड़कर चले जाएँ और साथ में अपनी तोपें और शानदार हथियार और बाक़ी सबकुछ भी लेते जाएँ तो भारत का शासक कौन होगा? क्या यह मुमकिन है कि इन हालात में दोनों क़ौमें- मुसलमान और हिंदू- एक ही सिंहासन पर बैठे और सत्ता में बराबर के भागीदार हों? निश्चित रूप से नही। यह ज़रूरी है कि दोनों में से कोई एक, दूसरे को अपने अधीन रखे। यह उम्मीद करना कि दोनों बराबरी के दर्ज़े पर रह सकते हैं, एक असंभव और अकल्पनीय ख़्वाहिश है। लेकिन जब तक एक क़ौम दूसरी क़ौम को अपने अधीन न कर ले और उसे अपना फ़रमाँबरदार न बना ले, तब तक शांति संभव नही है। यह निष्कर्ष निहायत ही पुख़्ता सबूतों पर आधारित है और इससे कोई इनकार नही कर सकता।'

सर सैयद अहमद के प्रयासों से मुसलमानों में अंग्रेज़ी शिक्षा का प्रभाव बढ़ा। शिक्षा के साथ शासन में भागीदारी का कौशल और इच्छा ने भी जन्म लिया।

लेकिन साथ ही यह भय भी सताने लगा कि अल्पसंख्यक होने के कारण उनको शासन में बराबरी की हिस्सेदारी नही मिल सकेगी और उनको न केवल दबाया जाएगा बल्कि उनकी संस्कृति, उनके धर्म और उनकी भाषा को कुचलने का प्रयास किया जाएगा।

इसी भय के कारण सर सैयद अहमद ख़ाँ के विचारों से प्रभावित कुछ प्रमुख मुसलमानों ने 1906 में अखिल भारतीय मुसलिम लीग की स्थापना की। इन नेताओं ने तब के वाइसरॉय मिंटो से मिलकर माँग की कि भारत के शासन से जुड़ा कोई भी भावी परिवर्तन हो तो उसमें मुसलमानों के लिए पृथक निर्वाचक मंडल के तहत सीटें सुरक्षित की जाएँ ताकि 'असहानुभूतिशील' बहुसंख्यक हिंदुओं से उनकी सुरक्षा हो सके।

पृथक निर्वाचन मंडल का अर्थ है किसी विधानसभा में किसी ख़ास समुदाय के लिए अलग से आवंटित सीटों की व्यवस्था जिसमें केवल उसी समुदाय के लोगों को वोट देने और चुनाव में खड़े होने का अधिकार हो। यह व्यवस्था इसलिए की जाती है क्योंकि संख्या के आधार पर होने वाले किसी भी चुनाव में यह आशंका बनी रहती है कि अधिकतर सीटों से बहुसंख्यक समुदाय के लोग ही चुनाव जीतकर आएँ और आबादी में 20 से 30% का हिस्सा होने के बावजूद ऐसा हो सकता है कि विधानसभा में उस समुदाय का प्रतिनिधित्व उससे बहुत कम हो। मिसाल के तौर पर उत्तर प्रदेश में मुसलमानों की आबादी 19% के आसपास है लेकिन मौजूदा विधानसभा में उनका प्रतिनिधित्व केवल 6% है। ऐसी स्थिति दुनिया के किसी भी प्रांत या देश में आ सकती है जहाँ समाज समुदाय के आधार पर अपना प्रतिनिधि चुनता है। ऐसी ही स्थिति की आशंका से तब पृथक निर्वाचक मंडल (Special Electorate) की माँग की गई थी।

पहले जिन्ना ने देश तोड़ने की माँग का किया था विरोध

लेकिन इस माँग का विरोध किया एक मुसलमान ने ही। वह मुसलमान था मुंबई का एक जाना-माना बैरिस्टर जो 1896 से ही कांग्रेस से जुड़ा हुआ था। उसने मुसलिम लीग के नेताओं की इस माँग का यह कहकर विरोध किया कि एक, ये नेता मुसलमानों का प्रतिनिधित्व नही करते और दो, उनकी यह माँग देश को तोड़ने वाली है। उस बैरिस्टर का नाम था मुहम्मद अली जिन्ना।

जिन्ना का शुरुआती राजनीतिक इतिहास बहुत दिलचस्प है। दिलचस्प इस कारण कि शुरू में वे जिन बातों का विरोध कर रहे थे, आगे चलकर वे उसी के समर्थक हो गए। यही नही, आगे चलकर वे इसी मुसलिम लीग के अध्यक्ष बने। लेकिन

परिस्थितियों के साथ विचारों और इरादों का बदलना कोई अनूठी व अस्वाभाविक बात नही है। यह बदलाव अगर हमने जिन्ना में देखा तो कांग्रेस के बाक़ी नेताओं में भी।

भारत में 'दो क़ौमों का सिद्धांत' 19वी सदी के अंतिम दशकों में सबसे पहले मुसलिम समाज सुधारक सर सैयद अहमद ख़ाँ ने दिया था जिनको लगता था कि यदि अंग्रेज़ भारत छोड़कर चले गए तो हिंदू बहुमत वाले भारत में मुसलमानों के साथ न्याय नही हो पाएगा। डॉ. सैयद अहमद ख़ाँ के विचारों से प्रेरित और प्रभावित कुछ लोगों ने 1906 में मुसलिम लीग की स्थापना की और तत्कालीन ब्रिटिश वाइसरॉय मिंटो से मिलकर माँग की कि भारत के शासन से जुड़ा कोई भी भावी परिवर्तन हो तो उसमें मुसलमानों के लिए पृथक निर्वाचक मंडल के तहत सीटें सुरक्षित की जाएँ ताकि 'असहानुभूतिशील' बहुसंख्यक हिंदुओं से उनकी सुरक्षा हो सके।

उनकी इस माँग का विरोध किया था तब के एक जाने-माने बैरिस्टर मुहम्मद अली जिन्ना ने, जिनका कहना था कि एक तो मुसलिम लीग के ये नेता मुसलमानों का प्रतिनिधित्व नही करते और दूसरे, उनकी यह माँग देश को तोड़ने वाली है। ध्यान दीजिए, यह बात जिन्ना ने कही थी कि मुसलमानों के लिए अलग सीटों की व्यवस्था देश को तोड़ने का काम होगा। जिन्ना 1896 से ही कांग्रेस से जुड़े हुए थे और वे कांग्रेस पार्टी की समावेशी विचारधारा के समर्थक थे। लेकिन वे लंबे समय तक अपने इन विचारों पर पूरी तरह क़ायम नही रह सके।

मुसलमानों के लिए पृथक निर्वाचक मंडल का विरोध करने वाले जिन्ना 1909 में बॉम्बे की ऐसी ही एक सीट से चुनकर इंपीरियल लेजिस्लेटिव असेंबली (एक तरह से केंद्रीय विधानसभा) के सदस्य बने। हालाँकि यह एक संयोग था क्योंकि उस सीट के लिए दो दावेदार थे और दोनों में से कोई भी पीछे नही हट रहा था तो जिन्ना को सर्वसम्मत उम्मीदवार बना दिया गया। लेकिन मुसलिम लीग की तरफ़ उनका झुकाव बढ़ रहा था। 1912 में वह मुसलिम लीग के वार्षिक अधिवेशन में शामिल हुए और वहाँ भाषण भी दिया। अगले साल वह उसके सदस्य भी बन गए हालाँकि उन्होंने साफ़ शब्दों में कहा कि लीग की सदस्यता उनकी दूसरी प्राथमिकता है, पहली प्राथमिकता देश की आज़ादी है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वह कांग्रेस के सदस्य भी बने रहे और 1913 में कांग्रेस की तरफ़ से बातचीत करने के लिए गोपालकृष्ण गोखले के साथ लंदन भी गए। गोखले ने उनके बारे में बाद में कहा, 'जिन्ना सारे सांप्रदायिक पूर्वग्रहों से मुक्त हैं जिसकी वजह से वह हिंदू-मुसलिम एकता के सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि साबित होंगे।'

राजनीति के उस दौर में कांग्रेस और मुसलिम लीग एक-दूसरे की घोर प्रतिद्वंद्वी थी और किसी भी विषय पर दोनों में सहमति असंभव-सी बात थी। लेकिन जिन्ना ने इस दूरी को पाटने की कोशिश की और 1916 में दोनों के बीच लखनऊ पैक्ट कराया जिसमें विभिन्न प्रांतीय विधानसभाओं के लिए हिंदू और मुसलिम कोटे पर सहमति बनी। बाल गंगाधर तिलक के नेतृत्व वाली कांग्रेस ने 29 दिसंबर 1916 को लखनऊ अधिवेशन में इसे मंज़ूरी दी तो जिन्ना के नेतृत्व में मुसलिम लीग द्वारा 31 दिसंबर 1916 को इसे स्वीकार किया गया। लखनऊ अधिवेशन में कांग्रेस के नरम और गरम दल भी एक हो गए।

कांग्रेस-मुसलिम लीग एकता

लखनऊ पैक्ट को हालाँकि पूरी तरह लागू नही किया जा सका, लेकिन इसके तहत कांग्रेस ने न केवल मुसलमानों के लिए पृथक निर्वाचक मंडल को स्वीकार किया बल्कि हर प्रांतीय विधानसभा में उनके लिए एक-तिहाई सीटें अलग करने पर भी सहमति जताई भले ही उस प्रांत में मुसलमानों की आबादी एक-तिहाई से कम हो। इसके साथ ही कांग्रेस ने इसपर भी रज़ामंदी दी कि किसी समुदाय से जुड़े ऐसे किसी विषय पर तब तक कोई क़ानून पास नही किया जाएगा जब तक कि उस समुदाय का तीन-चौथाई हिस्सा उससे सहमत न हो।

लखनऊ समझौता हिंदू-मुसलिम एकता की दिशा में एक उम्मीद की किरण लेकर आया। यह पहली बार था कि हिंदुओं और मुसलमानों ने भारत की राजनीतिक व्यवस्था में सुधार के लिए एक आवाज़ में माँग उठाई हो। इसके बाद कांग्रेस

और मुसलिम लीग के रिश्तों में काफ़ी सुधार आया। मुसलिम लीग भारत की स्वायत्तता के लिए कांग्रेस द्वारा लड़ी जा रही जंग में शामिल हो गई।

लेकिन यह सहमति बहुत लंबी नही चली। समय के साथ कांग्रेस के नेता बदले और उनके विचार भी। लखनऊ पैक्ट के कोई 12 साल बाद जब ब्रिटेन के भारत मंत्री लॉर्ड बर्कनहेड ने साइमन कमीशन का विरोध कर रहे भारतीय नेताओं से कहा कि आप ख़ुद संवैधानिक सुधारों पर अपने सुझाव लेकर आओ तो मोतीलाल नेहरू के नेतृत्व में एक सर्वदलीय समिति बनी। इस समिति ने लखनऊ पैक्ट की सारी सहमतियों को रद्दी की टोकरी में डाल दिया और सुझाव दिया कि चुनाव क्षेत्रों का गठन भौगोलिक आधार पर हो न कि सामुदायिक आधार पर। समिति का मानना था कि इस तरह समुदाय उम्मीदवारों की जीत के लिए एक-दूसरे पर निर्भर रहेंगे और उनमें भाईचारा बढ़ेगा।

जिन्ना का 14 सूत्री फ़ार्मूला

जिन्ना जो धर्म के आधार पर पृथक निर्वाचक मंडलों के हामी हो गए थे, इस मुद्दे पर कांग्रेस से कुछ शर्तों पर समझौता करने को तैयार थे लेकिन दोनों दलों में बात बन नही पाई। चूँकि कांग्रेस की तरफ़ से, जिसमें ज़्यादातर हिंदू थे, हिंदुओं की बात सामने आ गई थी, इसलिए ब्रिटिश हुकूमत के सामने मुसलमानों का पक्ष रखने के लिए जिन्ना ने अपनी तरफ़ से एक 14 सूत्री माँगपत्र पेश किया जिसका मक़सद भारत के किसी भी भावी स्वरूप में मुसलमानों के हितों की सुरक्षा करना था। इसमें कई बातें लखनऊ पैक्ट वाली ही थी। लेकिन कांग्रेस ने उनके इस 14 सूत्री माँगपत्र को सिरे से नकार दिया और जवाहरलाल नेहरू ने तो उन्हें 'हास्यास्पद' तक कह डाला। इसके बाद कांग्रेस और मुसलिम लीग में संबंध फिर से ख़राब हो गए और दोनों ने अलग-अलग राह पकड़ ली।

आइए, देखते हैं कि जिन्ना के 14 सूत्री फ़ार्मूले में क्या-क्या बिंदु थे।

1. **भावी संविधान का ढाँचा परिसंघीय होना चाहिए और अवशिष्ट शक्तियाँ प्रांतों के पास सुरक्षित रहनी चाहिए।**
2. **सभी प्रांतों को एक तय सीमा तक स्वायत्तता की गारंटी हो।**
3. **देश की सभी विधानसभाओं और अन्य निर्वाचित निकायों को ऐसे तय सिद्धांत के आधार पर गठित किया जाए जिससे हर प्रांत में अल्पसंख्यकों को पर्याप्त और प्रभावशाली प्रतिनिधित्व मिले लेकिन ऐसा करते हुए यह ध्यान रखा जाए कि उस प्रांत के बहुसंख्यक कही अल्पसंख्यक या समसंख्यक न हो जाएँ।**
4. **केंद्रीय विधानसभा में मुसलमानों का प्रतिनिधित्व एक-तिहाई से कम नही हो।**
5. **सभी समुदायों का प्रतिनिधित्व पृथक निर्वाचक मंडलों की मौजूदा व्यवस्था की तरह ही जारी रहे लेकिन किसी भी समुदाय को यह अधिकार हो कि भविष्य में कभी भी पृथक निर्वाचक मंडल के स्थान पर साझा निर्वाचक मंडल का विकल्प स्वीकार कर ले।**
6. **भविष्य में किया जाने वाला कोई भी ज़रूरी भूमि वितरण मुसलिम बहुसंख्यकता को प्रभावित नही करे।**
7. **सभी समुदायों को संपूर्ण धार्मिक स्वतंत्रता - अर्थात आस्था, पूजा, धर्मपालन, धर्मप्रचार, सम्मिलन और धर्मशिक्षा की स्वतंत्रता - की गारंटी हो।**
8. **किसी भी विधानसभा या निर्वाचित निकाय में किसी भी समुदाय से जुड़े ऐसे किसी भी मामले पर कोई विधेयक या प्रस्ताव या उसका अंश स्वीकृत नही किया जाएगा यदि उस निकाय में मौजूद उस समुदाय के तीन-चौथाई सदस्यों का मानना हो कि उससे उस समुदाय के हितों को नुक़सान पहुँचेगा। या फिर ऐसे मामलों से निबटने के लिए अन्य कोई उपाय तय किया जा सकता है जो व्यावहारिक और अमली जामा पहनाने लायक हो।**
9. **सिंध को बॉम्बे प्रेसिडेंसी से अलग कर दिया जाए।**
10. **पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत और बलूचिस्तान में भी बाक़ी प्रांतों जैसे ही सुधार लागू किए जाएँ।**

11. **राज्य की सभी सेनाओं में तथा स्थानीय स्वशासी निकायों में शेष भारतीयों के साथ-साथ मुसलमानों का भी पर्याप्त हिस्सा सुनिश्चित करने का प्रावधान संविधान में किया जाए लेकिन ऐसा करते समय ज़रूरी कौशल की अनदेखी न की जाए।**
12. **संविधान में मुसलिम संस्कृति की रक्षा और मुसलिम शिक्षा, भाषा, धर्म, निजी क़ानून व मुसलिम धर्मार्थ संगठनों की सुरक्षा और प्रचार-प्रसार के लिए पर्याप्त सुरक्षा उपाय हों। साथ ही उसमें इस बात की भी पक्की व्यवस्था हो कि राज्य एवं स्वशासी निकायों द्वारा दिए जाने वाले अनुदानों में उनको अपना उचित हिस्सा मिले।**
13. **केंद्र या प्रांत में जो भी मंत्रिमंडल बने, उसमें मुसलमान मंत्रियों की हिस्सेदारी कम-से-कम एक-तिहाई हो।**
14. **केंद्रीय विधानसभा भारतीय परिसंघ के सदस्य राज्यों की सहमति के बिना संविधान में कोई भी बदलाव नहीं करेगी।**

जिन्ना द्वारा प्रस्तावित इन 14 बिंदुओं में सबसे महत्वपूर्ण बिंदु ये थे - सभी समुदायों के लिए पृथक निर्वाचक मंडल, केंद्रीय और प्रांतीय विधानसभाओं और मंत्रिमंडलों में मुसलमानों के लिए एक-तिहाई प्रतिनिधित्व, सभी प्रांतों के लिए सुनिश्चित स्वायत्तता और संविधान में किसी भी परिवर्तन के लिए प्रांतों की मंजूरी।

जिन्ना और पृथक निर्वाचक मंडल

जिन्ना मुसलमानों के लिए पृथक निर्वाचक मंडल की जो माँग कर रहे थे, यह जिन्ना के अपने दिमाग़ की उपज नहीं थी। उस दौर में पृथक निर्वाचक मंडलों का चलन आम था जो 1918-19 के मोंट-फ़ोर्ड सुझावों से पहले भी लागू था और उन सुझावों के बाद 1920 से लेकर 1946 तक जितने भी चुनाव हुए, उन सबमें भी पृथक निर्वाचक मंडलों की व्यवस्था थी। पृथक निर्वाचक मंडल इसलिए होते थे ताकि हर प्रभावशाली समूह की बातें और शिकायतें ऊपर तक पहुँचें हालाँकि ग़रीबों, किसानों, मज़दूरों के लिए ऐसी कोई व्यवस्था नहीं थी। उनको तो वोट तक देने का अधिकार नहीं था। उन दिनों भारत की कुल वयस्क आबादी के 13% से लेकर 20% तक को ही वोट देने का अधिकार था और वह अधिकार शिक्षा, संपत्ति, भूमि के स्वामित्व और इनकम टैक्स की अदायगी आदि के आधार पर तय होता था।

दूसरे, जिन्ना ने सभी विधानसभाओं और कैबिनेटों में मुसलमानों के लिए एक-तिहाई प्रतिनिधित्व की माँग इसलिए की थी कि तब के भारत में हिंदुओं और मुसलमानों की आबादी का अनुपात तक़रीबन 2:1 का था। हालाँकि सिख, आदिवासी और दलितों को यदि हिंदू आबादी में शामिल कर लें तो यह अनुपात 3:1 का होता था।

ख़ैर, जिन्ना के ये 14 बिंदु कांग्रेस ने तो अस्वीकार कर ही दिए थे, ख़ुद मुसलिम लीग भी इन पर एकमत नहीं हो पाई। अपने प्रयासों के नाकाम होने के बाद जिन्ना काफ़ी मायूस हो गए और 1930 में वह इंग्लैंड चले गए और अगले कुछ सालों तक वहीं रहे। कुछ विद्वानों का मत है कि भारतीय राजनीति से उनका मन उचट गया था और वह ब्रिटेन की संसद में भागीदारी करना चाहते थे। कुछ और का कहना है कि वह कुछ समय तक भारतीय राजनीति से दूर रहना चाहते थे। सच चाहे जो हो, जिन्ना कुछ सालों के बाद ही भारत लौटे।

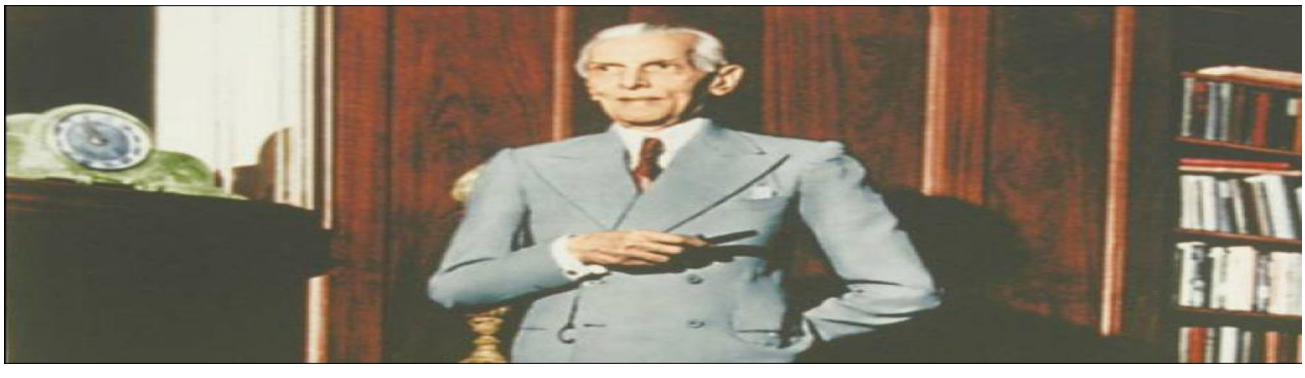

जिन्ना को किसने दिया था पाकिस्तान बनाने का विचार?

भारत के राजकाज में भारतीयों की हिस्सेदारी बढ़ाने के लिए ब्रिटेन ने 1927 में सात ब्रिटिश सांसदों का एक दल बनाया जिसकी अध्यक्षता जॉन साइमन कर रहे थे और जिसकी वजह से इस दल का नाम साइमन कमीशन पड़ा। चूँकि इस कमीशन में कोई भारतीय नही था, इसलिए कांग्रेस और मुसलिम लीग के जिन्ना-नीत गुट ने उसका विरोध किया। तब ब्रिटेन के भारत मंत्री ने इन नेताओं को चुनौती दी कि यदि वे सक्षम हैं तो ख़ुद ही ऐसा संविधान तैयार करके पेश करें जिससे भारत के सारे लोग मोटे तौर पर सहमत हों। कांग्रेस ने यह चुनौती स्वीकार की और मोतीलाल नेहरू के नेतृत्व में बनी एक सर्वदलीय समिति ने भारत के भावी संविधान का एक प्रारूप तैयार किया जिसे नेहरू रिपोर्ट कहा जाता है। इस दल में जवाहरलाल नेहरू, सुभाष चंद्र बोस के अलावा लिबरल पार्टी के नेता तेजबहादुर सप्रू भी थे जो आंदोलनों के बजाय ब्रिटिश हुकूमत से बातचीत करके हल निकालने के हामी थे।

नेहरू रिपोर्ट में भावी भारतीय स्वरूप में केंद्र को ज़्यादा शक्तिशाली बनाने की बात थी जबकि जिन्ना के प्रस्तावों में प्रांतों को ज़्यादा शक्ति देने पर ज़ोर था। नेहरू रिपोर्ट काफ़ी हद तक एकात्मक (यूनिटरी) शासन की वकालत करती नज़र आती थी जबकि जिन्ना की रिपोर्ट संघीय शासन की तरफ़ झुकी हुई थी।

नेहरू रिपोर्ट में पृथक निर्वाचक मंडलों की बात नही थी जबकि जिन्ना न केवल पृथक निर्वाचक मंडलों की माँग कर रहे थे बल्कि मुसलमानों के लिए केंद्र और सभी प्रांतों में (चाहे वहाँ मुसलमानों का अनुपात कितना भी हो), एक-तिहाई प्रतिनिधित्व की माँग कर रहे थे। नेहरू रिपोर्ट उन प्रांतों में अल्पसंख्यकों के लिए आरक्षित सीटें रखने के लिए सहमत थी जहाँ उनकी आबादी 10 प्रतिशत से ज़्यादा हो लेकिन यह आरक्षण आबादी में अनुपात के आधार पर होना था। यानी किसी राज्य में यदि अल्पसंख्यकों की आबादी 10 प्रतिशत हो तो वहाँ 10 प्रतिशत सीटें अल्पसंख्यकों के लिए आरक्षित रखी जा सकती थी।

नेहरू रिपोर्ट में राज्य को धर्मनिरपेक्ष रखने का प्रस्ताव था यानी राज्य किसी ख़ास धर्म को बढ़ावा या समर्थन नही देगा। जिन्ना के प्रस्तावों में भी इसका कोई विरोध नही था लेकिन विभिन्न धर्मावलंबियों को अपनी आस्था के अनुसार अपने धर्म के पालन-प्रचार-प्रसार की गारंटी की माँग थी।

नेहरू रिपोर्ट में किसी ख़ास भाषा को वरीयता देने की बात नही थी लेकिन यह निश्चित किया गया था संघ के कामकाज में किसी भारतीय भाषा का ही इस्तेमाल किया जाएगा। साथ ही अंग्रेज़ी को भी जारी रखने का प्रस्ताव था। जिन्ना के प्रस्तावों में इसपर अलग से कुछ नही था सिवाय इसके कि अल्पसंख्यकों की भाषा के विकास और प्रसार के मौक़े हों और उसके लिए उचित अनुदान मिले।

साइमन कमीशन की रिपोर्ट 1930 में इन दोनों के बाद आई। उसमें कुछ बातें ऐसी थी जो नेहरू रिपोर्ट से मेल खाती थी और कुछ बातें जिन्ना के प्रस्तावों से मिलती-जुलती थी और कुछ उसकी अपनी सिफ़ारिशें थी। साइमन कमीशन की रिपोर्ट में जिन्ना द्वारा प्रस्तावित पृथक निर्वाचक मंडलों को बरक़रार रखा गया था लेकिन उनकी एक-तिहाई वाली शर्त नही मानी गई थी।

गोलमेज सम्मेलन

चूँकि भारत के भावी स्वरूप और उसके संविधान तथा जनभागीदारी के तौर-तरीक़ों पर कोई सर्वसम्मति नही बन पाई, इसलिए नेहरू और साइमन रिपोर्टों के आने के बाद आगे बात करने के लिए लंदन में तीन गोलमेज सम्मेलन हुए। इन सम्मेलनों में देश के हर वर्ग के प्रतिनिधियों को बुलाया गया। इसमें तमाम राजनीतिक दल थे, राजा और नवाब थे, व्यापारियों और श्रमिकों के प्रतिनिधि थे, धार्मिक और दलित वर्गों के प्रतिनिधि थे, महिलाओं और विद्यार्थियों के प्रतिनिधि थे। उधर ब्रिटेन की तरफ़ से उसके सभी प्रमुख दलों के सांसद थे।

लेकिन एक बड़ा दल नही था इसमें। वह थी कांग्रेस। पहले गोलमेज सम्मेलन में कांग्रेस ने भाग नही लिया, दूसरे में लिया और तीसरे में फिर नही लिया। पहले और दूसरे गोलमेज सम्मेलन के बाद और बातों के अलावा यह तय हुआ कि भारत का एक परिसंघ बनाया जाए जिसमें मौजूदा प्रांतों के अलावा वे रियासतें भी शामिल हों जिनके शासक इस परिसंघ में शामिल

होना चाहते हैं। यह बात कांग्रेस के अनुकूल थी। लेकिन प्रांतों की विधानसभाएँ और केंद्रीय विधानमंडल चुनने के लिए जो व्यवस्था की जा रही थी, उससे कांग्रेस ख़ुश नही थी।

कम्यूनल अवॉर्ड की घोषणा

दूसरे गोलमेज सम्मेलन के बाद और तीसरे सम्मेलन से पहले ही ब्रिटेन के प्रधानमंत्री ने एक कम्यूनल अवॉर्ड की घोषणा कर दी जिसके अनुसार भावी चुनावों में सभी धर्मों और जातीय वर्गों को अलग-अलग आरक्षण मिलना था। ऊँची जातियों, अनुसूचित जातियों, मुसलमानों, बौद्धों, सिखों, भारतीय ईसाइयों, आँग्ल-भारतीयों, औरतों, व्यापारियों, ज़मीदारों, यहाँ तक कि महाराष्ट्र में मराठों तक के लिए पृथक निर्वाचक मंडलों की व्यवस्था थी।

मुसलिम लीग और जिन्ना इस अवॉर्ड से ख़ुश थे क्योंकि उनकी माँग काफ़ी हद तक मान ली गई थी लेकिन कांग्रेस और ख़ासकर गाँधीजी को लगा कि दलितों और अस्पृश्यों को अल्पसंख्यक घोषित किए जाने से वे हिंदुओं से अलग हो जाएँगे। अवॉर्ड का विरोध करते हुए उन्होंने पूणे के यरवदा जेल में आमरण अनशन शुरू कर दिया। कांग्रेस के नेता दौड़े-दौड़े आंबेडकर के पास पहुँचे और इन नेताओं, जिनमें वल्लभभाई पटेल भी शामिल थे, और आंबेडकर के बीच यह सहमति हुई कि दलितों को प्रतिनिधित्व देने के लिए केंद्रीय और प्रांतीय विधानसभाओं में सीटें आरक्षित होंगी। इस समझौते को पुणे समझौता कहा जाता है।

कम्यूनल अवॉर्ड की घोषणा के बाद नवंबर-दिसंबर 1932 में हुआ तीसरा गोलमेज सम्मेलन बिल्कुल फ़्लॉप रहा। कांग्रेस सहित बड़े दलों ने इसका बहिष्कार किया, लेबर के प्रतिनिधि भी नही आए। लेकिन इसके बाद एक ऐसी बात हुई जिसका पाकिस्तान के बनने में, ख़ासकर उसके नामकरण में बड़ा हाथ है।

तीसरे गोलमेज सम्मेलन के बाद भारतीय संवैधानिक सुधारों के लिए एक संसदीय समिति बनी थी जिसमें ब्रिटेन और भारत दोनों के प्रतिनिधि थे। इन प्रतिनिधियों को 1933 में एक पर्चा मिला जिसका शीर्षक था - अभी नही तो कभी नही - क्या हम जीवित बचेंगे या हमेशा के लिए ख़त्म हो जाएँगे? (Now or Never - Are we to live or perish forever?)। यह पर्चा कैम्ब्रिज में कानून पढ़नेवाले एक गुर्जर छात्र चौधरी रहमत अली ने लिखा था। उन्होंने उसपर तीन अन्य लोगों के भी हस्ताक्षर ले लिए थे ताकि यह न लगे कि ये बातें केवल एक अकेले व्यक्ति की दिमाग़ी उपज है। पाकिस्तान (उस समय पाकस्तान) शब्द का पहली बार इसी पर्चे में इस्तेमाल हुआ था। पर्चे के साथ एक चिट्ठी भी थी जिसमें लिखा था-

'भारत के इतिहास की इस पावन घड़ी में, जब ब्रिटेन और भारत के राजनेता इस देश के संघीय संविधान की बुनियाद रखने जा रहे हैं, हम यह अपील कर रहे हैं, हमारी साझा विरासत के नाम पर, हमारे 3 करोड़ मुसलिम भाइयों की तरफ़ से जो पाकस्तान में रहते हैं - (पाकस्तान से) हमारा मतलब है भारत की पाँच उत्तरी इकाइयाँ यानी पंजाब, उत्तर-पश्चिम सीमा प्रांत (अफ़ग़ान प्रांत), कश्मीर, सिंध और बलूचिस्तान।

स्वतंत्र देश की माँग

पर्चे में माँग की गई थी कि इन पाँच प्रांतों को भारत के प्रस्तावित परिसंघ से अलग एक स्वतंत्र देश बनाया जाए क्योंकि...

'हमारे धर्म और हमारी संस्कृति, हमारे इतिहास और हमारी परंपरा, हमारी सामाजिक संहिता और आर्थिक व्यवस्था, हमारे विरासत, उत्तराधिकार और विवाह से जुड़े क़ानून शेष भारत में रहने वाले अधिकतर लोगों से बुनियादी तौर पर अलग हैं। जिन आदर्शों के लिए हम अपना सर्वस्व बलिदान करने के लिए प्रेरित होते हैं, वे उन आदर्शों से मूलतः अलग हैं जिनके लिए हिंदू अपना सबकुछ न्यौछावर करने को तत्पर होते हैं। ये अंतर केवल ऊपरी और कुछ आधारभूत सिद्धांतों तक ही सीमित नही हैं। ये अंतर बहुत गहराई तक छाए हुए हैं और हमारी ज़िंदगी के छोटे-से-छोटे बिंदु तक को प्रभावित करते हैं। हम न तो एकसाथ खाते हैं, न आपस में ब्याह-शादी करते हैं। हमारे क़ौमी रिवाज़ और कैलंडर, यहाँ तक कि हमारा खानपान और पहनावा भी अलग है।'

पाकिस्तान बनवाने का आंदोलन

रहमत अली का मानना था कि पहले और दूसरे गोलमेज सम्मेलन में प्रतिनिधियों ने अखिल भारतीय परिसंघ बनाने के प्रस्ताव को स्वीकार करके एक अक्षम्य भूल और अविश्वसनीय धोखाधड़ी की है। उन्होंने माँग की कि इन पाँच प्रांतों के 3 करोड़ मुसलमानों के राष्ट्रीय स्वरूप को मान्यता देते हुए उनके लिए एक अलग संघीय संविधान की रचना की जाए।

इस पर्चे के प्रकाशन के बाद हिंदू प्रेस में इसकी और इसमें इस्तेमाल किए गए शब्द - पाकस्तान - की तीखी आलोचना हुई। इस तरह यह शब्द ज़ोरदार बहस का विषय बन गया और लोकप्रिय भी हो गया। बाद में इसका उच्चारण सुधारने के लिए इसमें इ (i) की मात्रा जोड़ी गई और उसके साथ ही पाकिस्तान बनवाने का आंदोलन शुरू हो गया जिसके अगुआ तब जिन्ना नही थे। जिन्ना 1930 के बाद से ही लंदन में रह रहे थे और संभवतः वहाँ की संसद से जुड़ने का प्रयास कर रहे थे। अगर जुड़ जाते तो शायद कभी भारत लौटकर नही आते।

लेकिन वे आए। कब आए, क्यों आए और किस तरह 1937 के चुनाव परिणामों में मुसलिम लीग की भीषण हार ने उनका रास्ता एकदम से बदल दिया, इसी को जानना ही इतिहास का असली मजा है।

रहमत अली को सज़ा

मगर जाने से पहले एक बात बताना यहाँ उचित होगा। पाकिस्तान को उसका नाम देने वाले रहमत अली को, जानते हैं, उनके इस योगदान का क्या इनाम मिला? 1948 में उनकी सारी संपत्ति ज़ब्त कर ली गई और उनको पाकिस्तान से निकाल दिया गया। 1951 में लंदन में उनका बहुत ही ग़रीबी की अवस्था में निधन हो गया। उनका गुनाह केवल इतना था कि वे 'कटा-पिटा' पाकिस्तान स्वीकार करने वाले जिन्ना से नाराज़ थे।

क्या चाहते थे मुहम्मद इक़बाल?

1937 से पहले ब्रिटिश राज के हिंदू-मुसलमान दोनों सोचते थे कि आज़ादी मिलने के बाद के भारत का रूप एकात्मक होगा और उसमें पूरा-का-पूरा ब्रिटिश शासित भारत समाया हुआ होगा। इसके बावजूद अलग तरह के प्रस्ताव भी फ़िज़ा में तैर रहे थे। 1930 में मुसलिम लीग के इलाहाबाद सेशन में मुहम्मद इक़बाल ने ब्रिटिश राज के तहत मुसलमानों के लिए अलग राज्य का आह्वान किया। 1933 में रहमत अली ख़ाँ का 'अभी नही तो कभी नही' वाला पर्चा हंगामा खड़ा कर ही चुका था जिसमें पहली बार पाकस्तान (बाद में पाकिस्तान) के रूप में एक अलग देश का प्रस्ताव दिया गया था।

मुसलमानों में भ्रम की स्थिति क्यों बनी?

हालाँकि कांग्रेस के कई नेता मज़बूत केंद्र वाले स्वतंत्र भारत की वकालत कर रहे थे, लेकिन जिन्ना समेत कुछ मुसलिम नेता 'मुसलमानों के हितों की रक्षा के समुचित उपाय' न होने तक इसे स्वीकार करने को तैयार नही थे। कुछ मुसलमान नेता कांग्रेस के साथ तब भी जुड़े हुए थे क्योंकि कांग्रेस आज़ादी के बाद धर्मनिरपेक्ष राज्य देने का वादा कर रही थी लेकिन कांग्रेस के ही कुछ नेता जैसे मदनमोहन मालवीय और वल्लभभाई पटेल खुलेआम यह घोषणा कर रहे थे कि स्वतंत्र भारत में गोहत्या पर प्रतिबंध होना चाहिए और हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाया जाना चाहिए। कांग्रेस इन परंपरावादी नेताओं से अपना पल्ला नही छुड़ा पा रही थी जिससे कांग्रेस-समर्थक मुसलमानों के मन में भ्रम की स्थिति उत्पन्न हो गई थी। लेकिन तब भी 1937 तक कांग्रेस को मुसलमानों का काफ़ी समर्थन था।

1937 में देशभर में चुनाव हुए। इन चुनावों में मुसलमानों के लिए अलग से सीटों की व्यवस्था थी लेकिन मुसलिम लीग उन राज्यों में भी बहुमत नही हासिल कर पाई जहाँ मुसलमान बहुसंख्यक थे।

दिल्ली में यद्यपि उसे कई मुसलिम सीटों पर जीत मिली लेकिन बाक़ी कही भी वह सरकार नही बना पाई हालाँकि बंगाल में वह सत्तारूढ़ गठबंधन का हिस्सा थी। कांग्रेस और उसके सहयोगियों ने उत्तर-पश्चिम सीमा प्रांत में भी सरकार बना ली और मुसलिम लीग को वहाँ एक भी सीट नही मिली जबकि वहाँ के लगभग सभी निवासी मुसलमान थे।

जब मुसलिम लीग ने संयुक्त प्रांत में कांग्रेस के साथ मिलीजुली सरकार बनाने का प्रस्ताव किया तो कांग्रेस ने उसे ठुकरा दिया। इतिहासकार जॉन टैल्बट लिखते हैं - कांग्रेस की प्रांतीय सरकारों ने मुसलिम आबादी की सांस्कृतिक और धार्मिक संवेदनशीलता को समझने और उनका सम्मान करने की कोई कोशिश नही की। इससे मुसलिम लीग के इस दावे को तगड़ा समर्थन मिला कि मुसलमानों के हितों की रक्षा वही कर सकती है। ग़ौर करने की बात है कि कांग्रेस शासन के इस दौर के बाद ही मुसलिम लीग ने पाकिस्तान राज्य की माँग उठानी शुरू की।

जिन्ना पर 1937 का गहरा असर

इन चुनाव परिणामों से जिन्ना और मुसलिम लीग पर क्या गुज़री होगी, इसका अंदाज़ा लगाते हुए भारत के पूर्व विदेश मंत्री जसवंत सिंह लिखते हैं - 1937 की घटनाओं का जिन्ना पर गहरा, सांघातिक असर पड़ा। 20 साल से वह यह भरोसा पाले हुए थे कि संयुक्त भारत में मुसलमानों के अधिकारों की रक्षा पृथक निर्वाचक मंडलों, उनकी संख्या-बहुलता को बनाए रखते हुए प्रांतीय सीमाओं के निर्धारण तथा उनके अधिकारों की रक्षा के अन्य उपायों से हो सकती है, लेकिन मुसलमान एकजुट नही हो पाए क्योंकि जिन्ना जिन मुद्दों को केंद्रबिंदु में लाना चाहते थे, वे गुटीय झगड़ों की भेंट चढ़ गए।

जसवंत आगे लिखते हैं - जब कांग्रेस सरकार बनाने में कामयाब हो गई और तक़रीबन सारे मुसलिम विधायकों को विपक्ष में बैठना पड़ा तो ग़ैर-कांग्रेसी मुसलमानों के सामने यह नंगा सच उजागर हो गया कि राजनीतिक तौर पर वे कितने निर्बल हैं। यह बात उनके दिमाग़ में बिजली की तरह कौंधी कि भले ही कांग्रेस मुसलिम सीटों में से एक पर भी जीत न हासिल कर पाई हो, मगर सामान्य सीटों के बल पर बहुमत पाकर वह अपनी ही ताक़त पर सरकार बना सकती है और बनाती रहेगी। बलराज पुरी का मानना है कि 1937 के चुनाव परिणामों के बाद जिन्ना इतने हताश हो गए कि उन्हें बँटवारे के अलावा कोई रास्ता दिखाई नही दिया। इतिहासकार अकबर अहमद के अनुसार जिन्ना ने कांग्रेस के साथ मेलमिलाप का विचार इसलिए भी त्याग दिया कि पिछले कुछ सालों से वे अपनी इसलामी जड़ों को फिर से तलाश रहे थे। अपनी पहचान, अपनी संस्कृति, अपने इतिहास का बोध उन्हें एक नई दिशा दे रहा था। इधर कुछ समय से उन्होंने अंग्रेज़ी पोशाक छोड़कर इसलामी लिबास पहनना शुरू कर दिया था।

लेकिन यह परिवर्तन अचानक नही आया था। इसके पीछे एक शख़्स था जिसका नाम था मुहम्मद इक़बाल जिन्होंने 'सारे जहाँ से अच्छा' गीत लिखा है। जैसा कि हमने ऊपर पढ़ा, 1930 में मुसलिम लीग के इलाहाबाद सेशन में मुहम्मद इक़बाल ने ब्रिटिश राज के तहत मुसलमानों के लिए अलग राज्य का आह्वान किया था। शुरू-शुरू में इक़बाल और जिन्ना में नही बनती थी। इक़बाल का मानना था कि ब्रिटिश राज में मुसलमानों के सामने जो संकट पेश आ रहा था, जिन्ना उनसे बेपरवाह थे। लेकिन 30 के दशक में दोनों में रिश्ते बदल गए। यह इक़बाल का ही असर था कि जिन्ना जो 1930 के बाद लंदन में जाकर बस गए थे और एक तरह से आत्मनिर्वासन ले लिया था, 1934 के बाद भारत लौटे और दोबारा से राजनीति में सक्रिय हुए। इक़बाल धीरे-धीरे जिन्ना को अपना हमख़्याल बनाने में कामयाब रहे और जिन्ना ने आगे के सालों में यह स्वीकार किया कि उनको बनाने में इक़बाल का काफ़ी हाथ रहा है। असल में इक़बाल ही पाकिस्तान के वजूद की तार्किक परिणति के शिपली थे, जिन्ना ओ सिर्फ उसके प्रवक्ता बने।

जिन्ना और इक़बाल

जिन्ना न केवल इक़बाल की राजनीति से प्रभावित हुए बल्कि उन्होंने उनके सिद्धांतों को भी अपनाया। यह असर 1937 के बाद दिखने लगा जब जिन्ना न केवल अपने भाषणों में इक़बाल के विचार दोहराने लगे बल्कि वे ग़रीबों और शोषितों के समक्ष अपने भाषणों में इसलामी प्रतीकों का भी इस्तेमाल करने लगे। इतिहासकार अहमद ध्यान दिलाते हैं कि जिन्ना ने हालाँकि कट्टरता का चोला नही पहना और वह मज़हबी आज़ादी और अल्पसंख्यकों की सुरक्षा की बातें अब भी करते थे लेकिन अब वह धर्मनिरपेक्ष नेता नही रहे; वह अब एक ऐसे आदर्श की बात करने लगे थे जो पैगंबर मुहम्मद का दिखलाया हुआ था। धीरे-

धीरे जिन्ना के भाषणों से ऐसे मुल्क की तसवीर उभरने लगी जो स्वतंत्रता, इंसाफ़ और बराबरी के इसलामी आदर्शों पर चलना चाहता था।

1937 के बाद क्या हुआ?

1937 के बाद अपने नए रूप और रणनीति के तहत जिन्ना ने मुसलमानों को लीग से जोड़ने के लिए जीतोड़ मेहनत की। उन्होंने बंगाल और पंजाब की प्रांतीय सरकारों की तरफ़ से केंद्र सरकार से बात करने का अधिकार हासिल कर लिया। मुसलिम लीग का सदस्यता शुल्क दो आना कर दिया (कांग्रेस का सदस्यता शुल्क तब चार आने था)। उन्होंने कांग्रेस की ही तर्ज़ पर लीग का पुनर्गठन किया और कार्यसमिति को, जिसका चयन उनके ख़ुद के हाथों में था, शक्तिसंपन्न बनाया।

नेहरू के बयान ने जिन्ना से बनती हुई बात बिगाड़ी

1937 के प्रांतीय और केंद्रीय विधानसभा के चुनावों में यह साबित हो गया कि भारत के मुसलमानों का प्रतिनिधित्व न मुसलिम लीग करती है और न ही कांग्रेस। मुसलिम लीग जो मुसलमानों का एकल प्रतिनिधि होने का दावा करती थी, उसे पूरे भारत में मुसलमानों के लिए आरक्षित सीटों में भी केवल 25% पर जीत हासिल हुई जबकि कांग्रेस को 6% सीटों पर विजय मिली। बाक़ी सारी सीटें क्षेत्रीय मुसलिम पार्टियों को मिली। मुसलिम लीग किसी भी राज्य में सरकार बनाने में कामयाब नही हुई। संयुक्त प्रांत में जहाँ उसे 26 सीटें मिली थी, वहाँ उसने कांग्रेस के साथ मिलीजुली सरकार बनाने का प्रस्ताव रखा लेकिन कांग्रेस ने उसका प्रस्ताव ठुकरा दिया। कई विद्वान ऐसा मानते हैं कि कांग्रेस की इस बेरुख़ी से जिन्ना और मुसलिम लीग ने आगे जाकर कड़े तेवर अपना लिए।

इन परिणामों के बाद मुसलिम लीग और जिन्ना को समझ में आया कि पृथक निर्वाचक मंडलों के तहत मुसलमानों के लिए अलग सीटों के बावजूद वे किसी राज्य में सत्ता में नही आ सकते। उनका मानना था कि जब तक सत्ता में हिस्सेदारी न हो, तब तक मुसलमानों को बराबरी और इंसाफ़ नही मिल सकता। इसी के बाद मुसलमानों के लिए अलग और स्वतंत्र राज्य की माँग ने और ज़ोर पकड़ लिया।

मार्च 1940 में लाहौर में मुसलिम लीग का एक महाधिवेशन हुआ जिसमें मुसलमानों के लिए अलग राज्य की माँग की गई। इसे लाहौर प्रस्ताव कहते हैं। इसे ख़ुद जिन्ना ने तैयार किया था और सभा में बंगाल के प्रधानमंत्री फज़लुल हक़ ने पेश किया। प्रस्ताव में साफ़-साफ़ कहा गया था कि -

अखिल भारतीय मुसलिम लीग के इस सेशन का यह सुविचारित मत है कि इस देश में कोई भी संवैधानिक योजना तब तक व्यवहार में नही लाई जा सकती या मुसलमानों को स्वीकार्य नही हो सकती जब तक कि वह निम्नलिखित मौलिक सिद्धांत पर आधारित न हो, यथा भौगोलिक रूप से जुड़े हुए इलाक़ों को मिलाकर नए क्षेत्र बनाए जाएँ, ज़रूरी हो तो उनमें सीमाई बदलाव भी किए जाएँ ताकि जिन इलाक़ों में मुसलमान संख्या की दृष्टि से बहुमत में हैं जैसे भारत के पश्चिमोत्तर एवं पूर्वी अंचल, उनको मिलाकर स्वतंत्र राज्यों का रूप दिया जाए जहाँ उनकी घटक इकाइयाँ स्वायत्त और संप्रभु हों।

लाहौर प्रस्ताव के आशय को लेकर तब भी बहुत भ्रम था और आज भी है। इस प्रस्ताव में लिखे इस वाक्यांश से - स्वतंत्र राज्यों का रूप दिया जाए - इससे यह नही पता चलता था कि माँग एक नए स्वतंत्र राज्य की थी या बहुत सारे स्वतंत्र राज्यों की थी। 'घटक इकाइयाँ स्वायत्त और संप्रभु हों' इस वाक्यांश से तो यही लगता है कि नए स्वतंत्र राज्य जैसे पंजाब और सिंध एक-दूसरे से अलग और स्वायत्त होने थे। प्रस्ताव की इस अस्पष्टता का आगे चलकर लीग को बहुत नुक़सान उठाना पड़ा।

मुसलिम-बहुल बंगाल व पंजाब का विभाजन करते समय कांग्रेस ने लाहौर प्रस्ताव को ही बुनियाद बनाया। बहरहाल, एक बात स्पष्ट थी कि यह लाहौर प्रस्ताव मुसलमानों के लिए अलग राज्य या राज्यों की वकालत कर रहा था।

लाहौर घोषणा से पहले दुनिया में एक और बड़ी घटना हो चुकी थी। वह थी द्वितीय विश्व युद्ध। 3 सितंबर 1939 को ब्रिटेन के प्रधानमंत्री ने जर्मनी के साथ युद्ध की घोषणा कर दी। उसके अगले दिन वाइसरॉय लिनलिथगो ने किसी भी भारतीय

नेता से सलाह किए बिना एलान कर दिया कि इस युद्ध में भारत भी ब्रिटेन के साथ शामिल हो गया है। साथ ही स्वराज की सारी बातें युद्धकाल तक के लिए टाल दी गई।

कांग्रेस ने इसका विरोध किया और आज़ाद भारत के लिए जल्द-से-जल्द संविधान सभा गठित करने की माँग की। जब यह माँग नही मानी गई तो उसकी 8 प्रांतीय सरकारों ने विरोधस्वरूप इस्तीफ़े दे दिए। जिन्ना और लीग का इस मामले में रवैया न सहयोग का था, न विरोध का। बदले में अंग्रेजी शासन ने लीग को मुसलमानों का एकल प्रतिनिधि मान लिया।

इसी के कुछ समय बाद आया लाहौर प्रस्ताव जिसकी हमने ऊपर बात की। गाँधीजी ने लाहौर प्रस्ताव को पेचीदा बताया लेकिन साथ में यह भी कहा कि भारत के दूसरे लोगों की तरह मुसलमानों को भी आत्मनिर्णय का अधिकार है। बाक़ी कांग्रेसी नेताओं ने इस प्रस्ताव का तीखा विरोध किया। उसी साल ब्रिटेन में चर्चिल के नेतृत्व में नई सरकार आई।

नई सरकार की तरफ़ से वाइसरॉय ने भारतीय नेताओं से वादा किया कि यदि वे युद्ध में ब्रिटेन का समर्थन करें तो युद्ध समाप्त होने के बाद भारत का भविष्य तय करने के लिए एक प्रातिनिधिक सभा बनाई जाएगी और भारत के भविष्य का कोई भी फ़ैसला किसी बड़े जनसमूह की आपत्तियों को नज़रअंदाज़ करके नही किया जाएगा। कांग्रेस ने तो यह ऑफ़र ठुकरा ही दिया, मुसलिम लीग ने भी इसके प्रति हामी नही भरी। कारण यह था कि तब तक नए राज्य/राज्यों की सीमाओं के बारे में कुछ पक्का नही था, न ही ब्रिटिश राज या बाक़ी के उपमहाद्वीप के साथ नए राज्य/राज्यों के रिश्तों के बारे में ही कोई स्पष्टता थी। इसलिए वे कोई वचन लेने और देने को तैयार नही थे।

दिसंबर 1941 में जापान ने पर्ल बंदरगाह पर हमला कर दिया और इसके बाद अमेरिका भी युद्ध में टूट पड़ा। फ़रवरी 1942 में वह सिंगापुर पर कब्ज़ा कर चुका था और रंगून से अंग्रेज़ी फ़ौजों को पीछे हटना पड़ा था। ऐसे में भारत को जापानी हमले से बचाने के लिए ब्रिटिश हुकूमत को भारतीयों के पूरे समर्थन की ज़रूरत थी। इसी मक़सद से मार्च में लेबर पार्टी के नेता स्टैफ़र्ड क्रिप्स के नेतृत्व में एक दल भारत आया ताकि भारतीय नेताओं को मनाया जा सके। क्रिप्स ने कांग्रेस और लीग दोनों के सामने जो प्रस्ताव रखा था, उसमें युद्ध के बाद भारत को पूर्ण औपनिवेशिक स्वराज देने के वादे के साथ-साथ यह भी कहा गया था कि ऐसा करते वक्त कुछ प्रांतों को यह अधिकार होगा कि वे प्रस्तावित भारतीय संघ से कुछ समय के लिए या हमेशा के लिए अलग रहें या ख़ुद अपना एक महासंघ बनाएँ। लीग ने इसे इस रूप में देखा कि अंग्रेज़ी हुकूमत ने पहली बार अलग पाकिस्तान की माँग को सिद्धांत रूप में स्वीकार कर लिया है।कांग्रेस ने इसका विरोध किया और अगस्त 1942 में भारत छोड़ो आंदोलन शुरू कर दिया। इसकी प्रतिक्रिया में उसके सारे बड़े नेता जेल में डाल दिए गए और युद्ध ख़त्म होने तक वे जेल में ही रहे। जिन्ना इस बीच अपनी अलग राज्य की माँग के समर्थन में प्रचार करते रहे और जिन इलाक़ों में लीग का असर कम था, वहाँ भी अपना प्रभाव बढ़ाते रहे।

दूसरा विश्व युद्ध तो 1945 में समाप्त हुआ लेकिन स्वास्थ्य कारणों से गाँधीजी को 1944 में ही रिहा कर दिया गया। जर्मनी और जापान एक-के-बाद-एक मात खाए जा रहे थे और लग रहा था कि युद्ध जल्दी ही समाप्त हो जाएगा और उसके बाद स्वराज भी दूर नही रहेगा। लेकिन स्वराज मिलेगा तब भारत का रूप क्या रहेगा, इसपर शंका बनी हुई थी।

क्रिप्स मिशन के प्रस्तावों में प्रांतों को भारतीय संघ से अलग होने की अनुमति तो थी ही जो कांग्रेस को बिल्कुल रास नही आ रही थी। सो बीच का रास्ता निकालने के लिए गाँधीजी ने उसी साल सितंबर में जिन्ना से भेंट की। उनकी बातचीत दो हफ़्ते चली लेकिन कोई सकारात्मक परिणाम नही निकला। जिन्ना चाहते थे कि ब्रिटिश राज समाप्त होने से पहले ही पाकिस्तान की माँग मान ली जाए और साथ-साथ उसका गठन कर दिया जाए।

गाँधीजी का मत था कि एक बार आज़ादी मिल जाए, उसके बाद मुसलिम बहुसंख्यक इलाक़ों में जनमतसंग्रह करा लिया जाएगा कि वहाँ के लोग क्या चाहते है। गाँधीजी और जिन्ना में केंद्र सरकार के अधिकारों पर भी असहमति थी।
अगले साल के शुरू में कांग्रेस के भुलाभाई देसाई और लीग के लियाक़त अली ख़ाँ में इस बात की सहमति हुई कि युद्ध समाप्त होने के बाद वाइसरॉय की कार्यकारी परिषद के सदस्यों के साथ मिलकर जो अंतरिम सरकार बनेगी, उसमें कांग्रेस और लीग

के प्रतिनिधि बराबर-बराबर संख्या में होंगे। लेकिन जब जून 1945 में कांग्रेस के बाक़ी नेता रिहा हुए तो उन्होंने इस सहमति को ठुकरा दिया और कहा कि देसाई को इस तरह का वादा करने का कोई अधिकार प्राप्त नहीं था।

अंतरिम सरकार के बारे में बातचीत

कांग्रेस के नेताओं की रिहाई के साथ ही अंतरिम सरकार के बारे में बातचीत शुरू हो गई। लॉर्ड वेवल देश के नए वाइसरॉय बने और उन्होंने शिमला में सभी समुदायों के नेताओं की एक बैठक बुलाई। लेकिन लीग की यह माँग नहीं मानी गई कि अंतरिम सरकार में मुसलमानों का प्रतिनिधित्व करने का अधिकार केवल उसी को है। बाक़ी समुदायों ने भी अपने-अपने प्रतिनिधियों की लिस्ट सौंपी। लेकिन यह वार्ता बीच में ही रद्द कर दी गई क्योंकि ब्रिटेन में चुनाव होने वाले थे और यह तय किया गया कि अगला क़दम अगली सरकार के आने के बाद ही उठाया जाए।

चुनावों में लेबर पार्टी की जीत हुई जो भारत की आज़ादी के प्रति सहानुभूतिशील थी। उसके प्रधानमंत्री क्लेमंट ऐटली 1928 में भारत आए साइमन कमीशन के सदस्य रह चुके थे। चूँकि युद्ध के कारण 1937 के बाद प्रांतीय और केंद्रीय विधानसभाओं के चुनाव नहीं हुए थे, इसलिए पहले क़दम के तौर पर यही तय हुआ कि सर्वप्रथम सभी प्रांतों और केंद्र के लिए चुनाव कराए जाएँ। ब्रिटिश हुकूमत ने घोषणा की कि इन चुनावों के ठीक बाद संविधान बनाने की प्रक्रिया शुरू कर दी जाएगी।

मुसलिम लीग और जिन्ना के लिए ये चुनाव बहुत महत्वपूर्ण थे। 1937 में उनकी पार्टी की बुरी तरह से पराजय हुई थी और पार्टी को मुसलमानों के केवल एक-चौथाई वोट मिले थे। यदि इन चुनावों में भी उसकी हालत वैसी-की-वैसी रहती तो वह पाकिस्तान की अपनी माँग पर ज़ोर नहीं डाल सकती थी।

मुसलिम लीग ने घोषणा कर दी कि वह 'पाकिस्तान के एकमात्र मुद्दे' पर चुनाव लड़ेगी। अहमदाबाद में एक रैली में जिन्ना ने कहा, 'पाकिस्तान हमारे लिए ज़िंदगी और मौत का सवाल है।'

दिसंबर 1945 में संविधान सभा के लिए जो चुनाव हुए, उसमें हर मुसलिम सीट पर लीग को जीत हासिल हुई। अगले ही महीने प्रांतीय विधानसभा के चुनावों में भी लीग के खाते में तीन-चौथाई मुसलिम वोट आए।

शुरू हुई संविधान बनाने की प्रक्रिया

चुनावों के बाद जैसी कि ब्रिटिश हुकूमत ने घोषणा की थी, संविधान बनाने की प्रक्रिया शुरू कर दी गई। इस मक़सद से मार्च 1946 में एक तीन-सदस्यीय कैबिनेट मिशन भारत आया जिसमें क्रिप्स मिशन वाले जनाब क्रिप्स भी शामिल थे। इस दल ने सभी प्रमुख भारतीय नेताओं से बातचीत शुरू कर दी। मिशन की इच्छा थी कि भारतीय संघ एक रहे और उसके प्रांतों को स्वायत्त रहने का अधिकार हो। आपको याद होगा कि 1942 में क्रिप्स मिशन ने प्रस्ताव दिया था कि भारत के भावी स्वरूप में प्रांतों को साथ या अलग रहने का अधिकार होगा।

कैबिनेट मिशन की प्रस्तावित योजना इस प्रकार थी - देश में प्रांतों और केंद्र के बीच अधिकारों का बँटवारा होगा। प्रांतों को अकेले या समूह के रूप में रहने का अधिकार होगा। इस तरह देश में धर्म के आधार पर तीन समूह बन सकते हैं - पूर्व और पश्चिम में मुसलिम-बहुल दो समूह और मध्य और दक्षिण में हिंदू-बहुल एक समूह। इस हिसाब से संयुक्त प्रांत, मध्य प्रांत, बॉम्बे, बिहार और मद्रास को मिलाकर पहला समूह बनता जो हिंदू-बहुल होता जबकि सिंध, पंजाब, उत्तर-पश्चिम सीमा प्रांत और बलूचिस्तान को मिलाकर दूसरा समूह बनता और बंगाल और असम को मिलाकर तीसरा समूह। दूसरा और तीसरा समूह मुसलिम-बहुल होते।

कैबिनेट मिशन की योजना के तहत रक्षा, विदेश, संचार आदि के विषय केंद्र के हाथ में रहने थे। इस योजना पर अमल होने तक एक अंतरिम सरकार होनी थी जिसमें कांग्रेस और मुसलिम लीग दोनों के प्रतिनिधि होते।

जिन्ना ने इस योजना को स्वीकार कर लिया और कह दिया कि कांग्रेस यदि शामिल न भी हो तो हम अंतरिम सरकार में शामिल होने को तैयार हैं। उधर, कांग्रेस ने भी इसे स्वीकार कर लिया। दोनों को लग रहा था कि इस योजना के तहत उनकी जीत हुई है। जिन्ना को लग रहा था कि इस योजना से पाकिस्तान के हिस्से में 6 बड़े प्रांत आ जाएँगे और पंजाब व बंगाल जिसमें

बड़ी संख्या में हिंदू और सिख रहते हैं, उनका बँटवारा भी नहीं करना होगा। इसके अलावा पाकिस्तानी भूभाग में बड़ी संख्या में अल्पसंख्यक हिंदुओं और सिखों के रहने से बाक़ी के हिस्से में जिसे हिंदुस्तान कहा जाना था, अल्पसंख्यक मुसलमानों की सुरक्षा की गारंटी रहेगी।

उधर, कांग्रेस इन प्रस्तावों को अपने विचारों के अनुकूल मान रही थी क्योंकि उसके अनुसार चूँकि प्रांतों को किसी समूह में रहने या न रहने की आज़ादी थी, सो बहुत स्वाभाविक था कि उत्तर-पश्चिम सीमा प्रांत और असम जहाँ कांग्रेस की सरकारें थी, वे पाकिस्तान के बजाय हिंदुस्तान वाले समूह से जुड़ना चाहेंगे। जिन्ना कांग्रेस की इस व्याख्या से सहमत नहीं थे। उनके अनुसार कैबिनेट मिशन योजना के तहत पश्चिम के चार और पूर्व के दो राज्यों का दो मुसलिम-बहुल समूह का हिस्सा बनना बाध्यताकारी था।

इस बीच जवाहरलाल नेहरू के एक और बयान ने आग में घी डालने का काम किया। 10 जुलाई 1946 को नेहरू ने मुंबई में एक प्रेस कॉन्फ्रेंस में कहा कि कांग्रेस ने संविधान सभा में शामिल होने का निर्णय तो कर लिया है लेकिन यदि उसे ज़रूरी लगा तो वह कैबिनेट मिशन योजना में फेरबदल भी कर सकती है।

जिन्ना ने दी धमकी

नेहरू के इस बयान ने कैबिनेट मिशन की सारी योजना को ध्वस्त कर दिया और संयुक्त भारत की आख़िरी उम्मीद पर पानी फेर दिया। इससे जिन्ना का बौखलाना स्वाभाविक था। नेहरू के बयान की प्रतिक्रिया में उन्होंने भी एक प्रेस कॉन्फ्रेंस बुलाई और कहा कि यदि मुसलमानों को पाकिस्तान नहीं दिया गया तो मुसलिम लीग डायरेक्ट ऐक्शन (सीधी कार्रवाई) की मुहिम छेड़ेगी। जिन्ना ने पूछने पर भी यह नहीं बताया कि उनका डायरेक्ट ऐक्शन या सीधी कार्रवाई से क्या तात्पर्य है लेकिन उनकी बातों से लग रहा था कि कुछ भयंकर होने वाला है। उन्होंने इसके लिए 16 अगस्त का दिन तय किया और कहा, 'हम युद्ध नहीं चाहते। लेकिन अगर आप युद्ध चाहते हैं तो हम बिना किसी हिचक के इस दावत को क़बूल करते हैं। भारत या तो विभाजित होगा या फिर बर्बाद होगा।'

हमें नहीं मालूम कि जिन्ना ने पाकिस्तान न बनाए जाने की स्थिति में 'युद्ध' और 'बर्बाद भारत' (Destroyed India) की भविष्यवाणी की थी तो उनका क्या आशय था। लेकिन 16 अगस्त को कलकत्ता में जो हुआ, उसने सारे देश को हिलाकर रख दिया।

उन दंगों का विस्तृत विवरण देकर हम इतिहास के घावों को कुरेदना नहीं चाहते। लेकिन उस त्रासदी का एक अंदाज़ा देने के लिए बता रहे हैं कि तीन दिन तक चले दंगों में 4 हज़ार बेगुनाह हिंदू और मुसलमान मारे गए। एक लाख से ज़्यादा लोग बेघर हो गए। इन दंगों की प्रतिक्रिया में असम, बिहार, संयुक्त प्रांत, पंजाब और उत्तर-पश्चिम सीमा प्रांत में भी धार्मिक संघर्षों की वारदातें हुईं।

यह कहना ज़्यादती होगी कि जिन्ना के 'डायरेक्ट ऐक्शन' का मक़सद देशभर में हिंसा का माहौल पैदा करना और सांप्रदायिक दंगे करवाना था क्योंकि यदि ऐसा होता तो ये दंगे बड़े पैमाने तक केवल कलकत्ता तक सीमित नहीं रहते। कलकत्ता में दंगे भड़कने का कारण शायद यह था कि कैबिनेट मिशन की योजना के तहत सारे बंगाल के पाकिस्तान के पाले में जाने की स्थिति बनती दिख रही थी। इस कारण वहाँ के हिंदू और उनके नेता जो पाकिस्तान के साथ नहीं जाना चाहते थे, चिंतित थे। दूसरी तरफ़ मुसलमान अपने सपनों का पाकिस्तान न बनते देख उद्वेलित हो रहे थे। यदि भारत का विभाजन होने पर पंजाब और बंगाल के भी बँटवारे के बारे में पहले से ही स्पष्टता होती तो शायद दोनों प्रांतों में इतना तनाव और ख़ूनख़राबा नहीं होता।

कलकत्ता और बाक़ी इलाक़ों में हुई हिंसा ने यह साबित कर दिया था कि अब भारत को एक रखना नामुमकिन था। बँटवारा तो होगा लेकिन उस बँटवारे में कौन-कौन से इलाक़े हिंदुस्तान में रहेंगे और कौन से पाकिस्तान में, बस यही तय होना बाक़ी था। यह काम उतना आसान भी नहीं था।

पाक के भारत से जुड़ने के विरोधी क्यों थे नेहरू-पटेल?

1945 में द्वितीय विश्व युद्ध समाप्त होने के बाद ब्रिटिश हुकूमत ने, ख़ासकर लेबर पार्टी की नई सरकार ने भारत को औपनिवेशिक स्वराज देने के अपने वादे पर अमल करना शुरू किया। साल 1946 में कैबिनेट मिशन नामक एक दल भारत आया और स्वतंत्र भारत के संविधान निर्माण के लिए संविधान सभा के गठन की कार्रवाई शुरू की गई। कैबिनेट मिशन ने कल के भारत का एक राजनीतिक-प्रशासनिक ढाँचा भी प्रस्तावित किया जिसके अनुसार भारत के अंदर ही धर्म के आधार पर उत्तर-पश्चिम, पूर्व और मध्य-दक्षिण प्रांतों को मिलाकर तीन आंचलिक समूह बनने थे लेकिन इसके साथ ही किसी भी प्रांत को किसी भी समूह के साथ जाने या न जाने की अनुमति मिलनी थी।

इन प्रस्तावों का कांग्रेस और मुसलिम लीग दोनों ने स्वागत किया लेकिन बाद में कैबिनेट मिशन के प्रस्तावों की व्याख्या को लेकर फिर मतभेद उभर गए। इस बीच जवाहरलाल नेहरू ने यह भी कह दिया कि संविधान सभा कैबिनेट मिशन के प्रस्तावों में ज़रूरत पड़ने पर बदलाव भी कर सकती है। इससे जिन्ना भड़क गए। लीग ने 16 अगस्त को 'डायरेक्ट ऐक्शन' का अभियान शुरू किया जिसके बाद कलकत्ता और कुछ और इलाक़ों में भयंकर दंगे शुरू हो गए। इन दंगों के बाद लगने लगा कि विभाजन के अलावा अब कोई रास्ता नही बचा।

लेकिन कुछ लोगों को लग रहा था कि विभाजन के बाद भी विभाजित क्षेत्र एक महासंघ का हिस्सा बने रह सकते हैं। इसी उम्मीद में दिसंबर 1946 में एक और कोशिश की गई और नेहरू, लियाक़त अली और जिन्ना को लंदन बुलाया गया। लेकिन वहाँ कोई बात नही बनी। वार्ता के बाद एक संयुक्त बयान जारी किया गया जिसके अनुसार भारत के किसी भी इलाक़े के अनिच्छुक लोगों पर नया संविधान नही थोपा जाएगा। लेकिन जिन्ना इससे बहुत संतुष्ट नही हुए और लीग ने संविधान से जुड़े मामलों पर होने वाले विचार-विमर्श में भाग लेने से इनकार कर दिया। इसके बाद जिन्ना ने घोषणा कर दी कि वे पाकिस्तान के रूप में एक अलग और स्वतंत्र देश देखना चाहते हैं। इसके साथ ही भारतीय महासंघ - जिसका हिंदुस्तान और पाकिस्तान दोनों हिस्सा होते - बनने से पहले ही ध्वस्त हो गया।

अब बारी थी प्रांतों के बँटवारे की। विभाजन तो तय हो गया था, दोनों भारतीय महासंघ के हिस्सा नही होंगे, यह भी तय हो गया था। लेकिन किसके हिस्से कौन-कौनसे प्रांत आएँगे, यह पूरी तरह तय नही हुआ था। जिन्ना चाह रहे थे कि पंजाब और बंगाल जो मुसलिम-बहुल थे, पाकिस्तान के हिस्से में आ जाएँ। लेकिन इन प्रांतों में हिंदुओं और सिखों की बड़ी तादाद थी और वे पाकिस्तान के साथ अपना भविष्य नही जोड़ना चाहते थे। सो बात अटकी हुई थी।

ब्रिटेन की नई सरकार जल्द-से-जल्द भारत से विदा लेना चाहती थी। लेकिन वाइसरॉय वेवल कांग्रेस और लीग के मतभेदों के चलते कुछ ख़ास कर नही पा रहे थे। इसलिए मार्च 1947 को उनको हटाकर लॉर्ड माउंटबैटन को भारत का वाइसरॉय बनाया गया। माउंटबैटन को जून 1948 तक का वक़्त दिया गया कि इससे पहले भारत में सत्ता का हस्तांतरण हो जाना चाहिए। लेकिन उन्होंने यह काम 6 महीनों के अंदर ही कर दिया हालाँकि कुछ लोगों का कहना है और उसमें अंग्रेज़ी हुकूमत के लोग भी शामिल हैं कि अगर उन्होंने इतनी हड़बड़ी न की होती तो दंगों में लाखों लोगों की जानें न जाती।

पंजाब और बंगाल बँटवारे पर ठनी

ख़ैर, जैसे ही यह तय हो गया कि बँटवारा अब टल नही सकता, चीज़ें तेज़ी से आगे बढ़ने लगी। नेहरू ने बाद में 1959 में अपने कनाडाई जीवनीकार माइकल ब्रेशर के सामने यह स्वीकार कर लिया था, **'सच्चाई यह है कि हम सब थक चुके थे... विभाजन की योजना ने एक रास्ता खोला और हमने उसे स्वीकार कर लिया।'** कांग्रेस के नेताओं को लगा कि मुसलिम-बहुल प्रांतों वाला संयुक्त भारत कोई अच्छा सौदा नही होगा अगर इसके लिए एक कमज़ोर केंद्रीय सरकार की शर्त माननी पड़े; इससे बेहतर विकल्प होगा कि इन प्रांतों से रहित एक विभाजित भारत हो जिसकी बागडोर एक मज़बूत केंद्रीय सरकार के हाथों में हो।

इसके साथ ही कांग्रेस ने भी यह ठान लिया था कि पूरा का पूरा पंजाब या बंगाल पाकिस्तान के हिस्से में नही जाने देंगे क्योंकि वहाँ के हिंदू और सिख अल्पसंख्यक ऐसा नही चाहते।

जब जिन्ना को कांग्रेस के इरादों का पता चला तो उन्होंने एक बयान जारी किया। उन्होंने कहा - अब बंगाल और पंजाब को बाँटने की माँग की जा रही है, किसी ईमानदार मक़सद से नही, बल्कि कटुता और दुर्भावना से प्रेरित एक दुष्टताभरी चाल के तहत ताकि अव्वल तो ब्रिटिश सरकार और वाइसरॉय के सामने और परेशानियाँ उत्पन्न कर दी जाएँ और दूसरे मुसलमानों को यह बताकर और बार-बार दोहराकर हतोत्साहित कर दिया जाए कि उनको एक टूटा-फूटा और दीमकखाया पाकिस्तान ही हाथ आएगा।

जिन्ना ने कहा कि यदि पंजाब और बंगाल को इस आधार पर बाँटा जा रहा है कि उसमें रहने वाले अल्पसंख्यक पाकिस्तान के साथ जुड़ना नही चाहते तो यही बात उन प्रांतों में भी लागू हो सकती है जहाँ हिंदू बहुसंख्यक हैं और मुसलमान अल्पसंख्यक हैं और उनको भी बाँटना होगा। यदि ऐसा हुआ तो इन प्रांतों की प्रशासनिक, राजनीतिक और आर्थिक जड़ें हिल जाएँगी।

जिन्ना का प्रस्ताव - बंगाल, पंजाब को न बाँटा जाए

जिन्ना ने इसके बदले यह प्रस्ताव दिया कि पंजाब और बंगाल को न बाँटा जाए और यदि वहाँ रहने वाले अल्पसंख्यक भारत में जाना चाहें तो उनको जाने दिया जाए। इसी तरह भारत के हिस्से में आए प्रांतों के अल्पसंख्यक पाकिस्तान जाना चाहें तो उनको भी जाने दिया जाए।

कांग्रेस के नेता डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने जिन्ना की बातों को लीग के 1940 के लाहौर प्रस्ताव से ही काटा। उन्होंने याद दिलाया कि लाहौर प्रस्ताव में ही लिखा था कि भौगोलिक रूप से जुड़े हुए इलाक़ों को मिलाकर नए क्षेत्र बनाए जाएँ और ज़रूरी हो तो उनमें सीमाई बदलाव भी किए जाएँ...।

दोनों हाथों में लड्डू नही: राजेंद्र प्रसाद

डॉ. प्रसाद ने याद दिलाया कि **'उस प्रस्ताव के हिसाब से ही ऐसे मुसलिम-बहुल इलाक़ों को मिलाकर नया राज्य बनाया जा रहा है जो एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं और ज़रूरत को देखते हुए उसमें सीमाई बदलाव भी किए जा रहे हैं। प्रस्ताव के अनुसार मुसलिम लीग ऐसे किसी इलाक़े पर दावा नही कर सकती जो आपस में जुड़ा हुआ न हो और जहाँ मुसलमान बहुमत में न हों। यदि बंगाल और पंजाब के उन इलाक़ों के लोग जहाँ मुसलमान बहुमत में नही हैं, लीग के प्रस्ताव पर अमल करना चाहते हैं तो जिन्ना के मुँह से यह सुहाता नही है कि वे उन लोगों पर इल्ज़ाम लगाएँ और उन्हें अपशब्द कहें। आपके दोनों हाथों में लड्डू नही हो सकते।'**

जिन्ना की इस टिप्पणी पर कि पंजाब और बंगाल के विभाजन से इन प्रांतों की ज़िंदगी अस्तव्यस्त हो जाएगी, डॉ. प्रसाद ने कहा : वे भूल रहे हैं कि इसके लिए वे ख़ुद ज़िम्मेदार हैं जो भारत के बँटवारे की माँग करके केवल यही नही बल्कि सदियों से पनपे न जाने कितने ही बहुमूल्य रिश्तों को तार-तार कर रहे हैं।

माउंटबैटन की अंतिम योजना

पंजाब और बंगाल का विभाजन न करने की जिन्ना की बात नही मानी गई। 2 जून को माउंटबैटन ने भारतीय नेताओं के सामने अपनी अंतिम योजना रख दी जो इस प्रकार थी :

15 अगस्त 1947 को ब्रिटेन दोनों डोमिनियनों को सत्ता सौंप देगा।

प्रांत इस बारे में तय करेंगे कि वे मौजूदा संविधान सभा के साथ रहना चाहेंगे या नई (यानी पाकिस्तान) के साथ जुड़ना चाहेंगे।

बंगाल और पंजाब को भी वोट का अधिकार होगा - संविधान सभा चुनने का और विभाजन के बारे में राय देने का।

उत्तर-पश्चिम सीमा प्रांत (जहाँ मुसलिम-बाहुल्य के बावजूद लीग की सरकार नही थी) और असम के मुसलिम-बहुल सिलहट ज़िले में (जो पूर्वी बंगाल से जुड़ा हुआ था) रायशुमारी से तय होगा कि वहाँ के लोग किसके साथ जुड़ना चाहेंगे।

3 जून को माउंटबैटन, नेहरू, जिन्ना और सिख नेता बलदेव सिंह ने रेडियो पर इसकी औपचारिक घोषणा की। जिन्ना ने अपना संबोधन इस नारे से समाप्त किया - पाकिस्तान ज़िंदाबाद।

अगले कुछ हफ़्तों में पंजाब और बंगाल में वोट डाले गए और उसके हिसाब से दोनों का विभाजन हुआ। सिलहट और उत्तर-पश्चिम सीमा प्रांत ने पाकिस्तान के साथ जाने का फ़ैसला किया हालाँकि उ.प. सीमा प्रांत में बहुत कम वोटिंग हुई और केवल 10% लोगों को वोट डालने दिया गया। सिंध और बलूचिस्तान की विधानसभाओं ने भी पाकिस्तान से मिलने की राय जताई।

जिन्ना का संविधान सभा में भाषण

आज़ादी और साथ-साथ बँटवारे का दिन क़रीब आ रहा था। जिन्ना 7 अगस्त को मुंबई से कराची के लिए रवाना हुए। 11 अगस्त को पाकिस्तान की नई संविधान सभा की अध्यक्षता करते हुए उन्होंने कहा, **'आप आज़ाद हैं; आप आज़ाद हैं किसी भी मंदिर, किसी भी मसजिद या पाकिस्तान राज्य के किसी भी अन्य पूजास्थल में जाने के लिए... आप किसी भी धर्म या जाति के हो सकते हैं - राज्य के कामकाज का उससे कोई लेनादेना नही है... मैं समझता हूँ कि हमें अपने सामने यही आदर्श रखना चाहिए और कुछ समय के साथ आप देखेंगे कि हिंदू हिंदू नही रहे और मुसलमान मुसलमान नही रहे, धार्मिक अर्थ में नही क्योंकि वह तो उनकी निजी आस्था का विषय है, लेकिन राजनीतिक तौर पर और राज्य के नागरिक के रूप में।'**

इसके अगले ही दिन यानी 12 अगस्त को सीमा आयोग के अध्यक्ष रैडक्लिफ़ ने बँटवारे का नक़्शा माउंटबैटन को सौंप दिया। माउंटबैटन ने 17 अगस्त तक उसे जारी नही किया क्योंकि वे आज़ादी के जश्न को बेस्वाद नही करना चाहते थे। वैसे सीमाई इलाक़ों में रहने वाले हिंदुओं और मुसलमानों के लिए यह आज़ादी आग की लपटें और ख़ूनी तलवारें लेकर आई थी जिसमें लाखों हिंदू और मुसलमान जलकर ख़ाक हो गए या मर-कट गए और जो बचे, वे अपने नए देश या वतन में शरणार्थी बनकर रहने पर मजबूर हो गए। इस बँटवारे के कारण क़रीब डेढ़ करोड़ लोगों को अपनी जन्मभूमि या कर्मभूमि से बेदख़ल होना पड़ा और 5 से 10 लाख स्त्री, पुरुष और बच्चे मर गए या मार डाले गए।

लाखों लोगों की तबाही के बाद जो पाकिस्तान बना, क्या जिन्ना उससे ख़ुश थे? जवाब है नही, क्योंकि बंगाल और पंजाब के विभाजन के बाद जो भू-भाग पाकिस्तान के हिस्से आया था, उसे तो वे ख़ुद ही 'दीमक खाया' ठहरा चुके थे।
कुछ विद्वानों का मत है कि यदि जिन्ना को पता होता कि विभाजन में पंजाब और बंगाल का भी बँटवारा होगा तो वह शायद बँटवारे की ज़िद पर न अड़े रहते।

भारत महासंघ पर नेहरू-पटेल की राय

कुछ लोगों का यह भी कहना है कि जिन्ना केवल सत्ता में मुसलमानों की हिस्सेदारी और धार्मिक व अन्य अधिकारों की गारंटी चाहते थे और अंत-अंत तक उनकी इच्छा यही थी कि हिंदुस्तान और पाकिस्तान एक ढीलेढाले महासंघ का हिस्सा बनकर रहते जहाँ केंद्रीय स्तर पर दोनों की औकात बराबर की रहती। लेकिन जैसा कि हमने ऊपर देखा, नेहरू और पटेल इस बात के लिए राज़ी नही थे क्योंकि इस विकल्प की जड़ में थी एक कमज़ोर और लुंजपुंज केंद्रीय सत्ता जो कांग्रेस को बिल्कुल ही गवारा नही थी। उन्होंने संयुक्त भारत मगर कमज़ोर केंद्र बनाम विभाजित भारत मगर शक्तिशाली केंद्र के बीच दूसरे विकल्प को चुना।

जिन्ना बन जाते प्रधानमंत्री तो टल जाता बँटवारा?

पिछले साल दलाई लामा ने यह कहा कि यदि नेहरू जिन्ना को भारत का प्रधानमंत्री बनाने का गाँधीजी का प्रस्ताव मान लेते तो भारत का विभाजन नही होता। इस बात को और भी कई नेता इससे पहले और बाद में भी कई बार दोहरा चुके हैं। ऐसे में यह जानना ज़रूरी हो जाता है कि क्या गाँधीजी ने कभी ऐसा प्रस्ताव रखा था। अगर हाँ तो उस प्रस्ताव पर जिन्ना की क्या

प्रतिक्रिया थी और नेहरू का उस सारे मामले में क्या रोल था। इस जानकारी के आधार पर ही हम तय कर पाएँगे कि क्या जिन्ना को प्रधानमंत्री बनाने से भारत का बँटवारा टल सकता था।

जिन्ना को प्रधानमंत्री बनने से किसने रोका?

1946 का दिसंबर आते-आते यह तय हो चुका था कि पाकिस्तान अब बनकर रहेगा। ब्रिटिश सरकार की पहल पर लंदन में नेहरू-जिन्ना और लियाक़त अली की बैठक में यही निष्कर्ष निकलकर आया। फिर भी बँटवारे को टालने के लिए गाँधीजी ने अप्रैल 1947 में एक बार फिर अपना प्रस्ताव दोहराया कि जिन्ना को देश की अंतरिम सरकार का प्रधानमंत्री बना दिया जाए। यह प्रस्ताव वह इससे पहले 1942 में तत्कालीन वाइसरॉय लिनलिथगो के सामने रख चुके थे और कुछ समय पहले कैबिनेट मिशन के सामने भी दोहरा चुके थे। ध्यान दीजिए, वह जिन्ना को अंतरिम सरकार का प्रधानमंत्री बनाने का सुझाव दे रहे थे, आज़ाद भारत का प्रधानमंत्री नहीं।

गाँधीजी ने जिन्ना को अंतरिम सरकार का प्रधानमंत्री बनाने का ऐसा प्रस्ताव क्यों दिया था? इसलिए कि जिन्ना को आज़ादी के बाद जैसा भारत गठित होता दिख रहा था, उसमें उन्हें मुसलमानों के साथ अन्याय और अत्याचार होने की आशंकाएँ नज़र आ रही थीं।

गाँधीजी ने कहा, अगर आपको ऐसा ही लगता है तो आप ही बन जाओ देश के अंतरिम प्रधानमंत्री और जैसा चाहते हो, वैसा ही संविधान बनवाओ - बस, देश को मत बाँटो।

गाँधीजी ने यह प्रस्ताव 1 अप्रैल 1947 को लॉर्ड माउंटबैटन के सामने रखा जो नए-नए वाइसरॉय बने थे। गाँधीजी ने उनसे मुलाक़ात की और मौजूदा हालात में उनके हिसाब से जो सर्वश्रेष्ठ समाधान हो सकता था, वह पेश किया। उन्होंने कहा, 'मिस्टर जिन्ना को मुसलिम लीग के सदस्यों के साथ तत्काल केंद्र में अंतरिम सरकार बनाने की दावत दे दी जाए।'

माउंटबैटन को यह प्रस्ताव बड़ा अजीब लगा, ख़ासकर जब पाकिस्तान का बनना तय हो गया था, उस समय ऐसी अनोखी बात! उसी शाम वह नेहरू से मिले और गाँधीजी से हुई बातचीत से अवगत कराया। नेहरू बिल्कुल ही आश्चर्यचकित नहीं हुए। बोले, 'ऐसा सुझाव वह कैबिनेट मिशन को भी दे चुके हैं।'

यह सही भी है। एक साल पहले कैबिनेट मिशन के सामने गाँधीजी ने यह प्रस्ताव रखा था और मिशन के सदस्य इसे 'नितांत अव्यावहारिक' बताकर उसे अस्वीकार कर चुके थे।

जिन्ना ने क्यों ठुकराया प्रस्ताव?

अब यह जानना रोचक होगा कि ख़ुद जिन्ना का इसके बारे में क्या ख़्याल था। 'जिन्ना ऑफ़ पाकिस्तान' नामक पुस्तक के लेखक स्टैनली वॉल्पर्ट ने लिखा है कि जिन्ना इस प्रस्ताव के प्रति उत्सुकता दिखा सकते थे अगर उनको गाँधीजी पर आस्था या विश्वास होता। भरोसा इसलिए नहीं था कि जिन्ना के अनुसार, 'आज़ाद भारत के बारे में मि. गाँधी की समझ हमारी समझ से पूरी तरह अलग है। मि. गाँधी के आज़ाद भारत का अर्थ है - कांग्रेस राज।'

गाँधीजी इस मामले में जिन्ना की राय से अच्छी तरह परिचित थे। इसीलिए 1 अप्रैल की बातचीत में जब माउंटबैटन ने पूछा कि आपको क्या लगता है, जिन्ना इस प्रस्ताव पर कैसा रुख अपनाएँगे, तो गाँधीजी ने कहा, 'अगर आप उनसे कहेंगे कि यह प्रस्ताव मैंने दिया है तो उनकी प्रतिक्रिया होगी - चालाक गाँधी।' माउंटबैटन ने भी मज़ाकिया लहज़े में पूछा, 'क्या वह सही कह रहे होंगे?' गाँधीजी ने तत्काल कहा, 'नहीं, नहीं, (कोई चालाकी नहीं), मैं पूरी ईमानदारी से यह सुझाव दे रहा हूँ।'

क्या था पेच?

गाँधीजी चाहे जितने ईमानदारी से यह सुझाव दे रहे हों, कांग्रेस, मुसलिम लीग या ब्रिटिश सरकार के लोग इसे गंभीरतापूर्वक नहीं ले रहे थे। कैबिनेट मिशन इसे 'नितांत अव्यावहारिक' बता ही चुका था, ख़ुद माउंटबैटन की टीम के वरिष्ठ अधिकारी भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि 'यह प्रस्ताव अमल में लाने जाने लायक नहीं है। अव्वल तो जिन्ना ख़ुद ही इसे अस्वीकार कर चुके थे, दूसरे अगर वह इसे मान लेते तो भी उनकी सरकार पूरी तरह कांग्रेसी बहुमत के समर्थन पर निर्भर होती...

और नतीजतन हर विधायी या राजनीतिक कार्रवाई निर्णय के लिए वाइसरॉय के सामने रखी जाती और वाइसरॉय जो भी क़दम उठाते, उसका ग़लत अर्थ निकाला जाता।'

स्पष्ट है, जिन्ना भी यह बात समझ रहे थे कि गाँधीजी का यह प्रस्ताव एक ऐसा रणनैतिक क़दम था जिसका मक़सद मुसलिम लीग का भरोसा जीतना था।

जिन्ना ख़ुद भी जानते थे कि बिना बहुमत के समर्थन के कोई भी व्यक्ति ज़्यादा दिनों के लिए नेता नही बना रह सकता था। इसी कारण उन्होंने यह प्रस्ताव स्वीकार नही किया। ऐसे में यह कहना कि नेहरू ने प्रधानमंत्री बनने के लालच में जिन्ना को पीएम नही बनने दिया, सरासर बेबुनियाद और केवल दुष्प्रचार है।

जिन्ना क्यों नही चाहते थे मज़बूत केंद्र?

आज इस सीरीज़ का अंत करते हुए हम एक बार फिर से वही सवाल पूछेंगे जो हमने इस सीरीज़ की शुरुआत करते हुए पूछा था - भारत विभाजन का दोषी कौन है और क्या उसे टाला जा सकता था। यदि आपने इसकी सारी कड़ियाँ पढ़ी होंगी तो आप समझ गए होंगे कि बँटवारे के मुख्य सूत्रधार जिन्ना थे हालाँकि वह बँटवारे से एक साल पहले तक भी यही कोशिश कर रहे थे कि पाकिस्तान अलग होकर भी भारत (इंडिया) का हिस्सा बना रहे। मगर इस एकता के लिए उनकी जो शर्त थी, वह कांग्रेस को मंज़ूर नही थी। जिन्ना चाहते थे कि धर्म के आधार पर हिंदुस्तान और पाकिस्तान नाम के दो अलग-अलग राज्य हों और ये दोनों भारत यानी इंडिया की एक केंद्रीय सरकार के तहत भारतीय महासंघ के अंग हों। लेकिन ऐसी व्यवस्था में केंद्र के पास बहुत कम अधिकार रह जाने वाले थे जो कांग्रेस और उसके नेताओं को स्वीकार्य नही थे।

तब देश के सामने दो ही विकल्प थे-

1. कमज़ोर केंद्र के साथ संयुक्त भारत और
2. मज़बूत केंद्र के साथ विभाजित भारत।

यह कहना बहुत ही मुश्किल है कि आज की तारीख़ में कौनसा विकल्प बेहतर साबित होता। हर व्यक्ति की अलग-अलग राय हो सकती है, आपकी भी और मेरी भी। नेहरू और पटेल को 'कमज़ोर केंद्र' का पहला विकल्प नही जमा और इसीलिए उन्होंने विभाजन को 'कमतर बुराई' मानकर स्वीकार किया। जिन्ना को 'मज़बूत केंद्र' का दूसरा विकल्प नही जमा और उन्होंने अलग होना ही मुनासिब समझा। दोनों पक्ष अपनी-अपनी जगह सही थे और विभाजन के लिए किसी को दोष नही दिया जा सकता।

जिन्ना की आशंका कहाँ तक सही?

कुछ लोग जानना चाह सकते हैं कि आख़िर जिन्ना को मज़बूत केंद्र से क्या समस्या थी। इसका जवाब पाने के लिए आपको बहुत दूर नही जाना पड़ेगा। हाल का जम्मू-कश्मीर का घटनाक्रम इस बात का ताज़ातरीन प्रमाण है कि एक मज़बूत केंद्र किसी कमज़ोर प्रांत के साथ कैसा सलूक कर सकता है। बहुत मुमकिन है कि जो व्यवहार आज भारत के एकमात्र मुसलिम-बहुल राज्य के साथ हो रहा है, वह संयुक्त भारत के बाक़ी मुसलिम-बहुल राज्यों के साथ भी होता। इन प्रांतों की चुनी हुई सरकारें गिरा दी जाती, उनके नेताओं को जेल में डाल दिया जाता, बंदूकों के बल पर वहाँ के नागरिकों को घरों में क़ैद कर दिया जाता और देश के अधिकतर हिंदू-बहुल राज्य इन कार्रवाइयों का मौन या मुखर समर्थन कर रहे होते जैसा कि आज कर रहे हैं।

जिन्ना का पाक भी उसी राह पर

जिन्ना ने बहुमतशाही की यह प्रवृत्ति आज से 80 साल पहले ही देख ली थी (हालाँकि उस समय हिंदुत्ववादी शक्तियाँ उस तरह हावी नही थी जिस तरह पिछले कुछ सालों से हैं) इसीलिए वह मज़बूत केंद्र के विरोधी थे। हालाँकि यह एक विडंबना ही है कि जिस शक्तिशाली केंद्रीय बहुमतशाही के वह तब विरोधी थे, वही बहुमतशाही पाकिस्तान में उसके जन्म से ही चल रही है और प्रांतों के साथ जिस अन्याय की वह तब आशंका जाहिर कर रहे थे, वह अन्याय हमने पूर्वी पाकिस्तान के मामले में बड़े घिनौने रूप में देखा और बलूचिस्तान सहित अन्य हिस्सों में भी देख रहे हैं।